प्रकाशक

मं ग ल प्र का श न
गोविन्द राजियों का रास्ता,
जयपुर-१

मूल्य
१५-०० [ पन्द्रह रूपए मात्र ]

प्रथम संस्करण [पुनःसंस्कारित] १६७४

मुद्रक
मं ग ल प्रे स
नाहर गढ़ रोड़, जयपुर-१

समर्पण

श्रद्धेय डॉ० माता प्रसाद गुप्त
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
[ राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ]
को सादर

हरीश

# अपनी बात

यह आदिकाल है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल, जिसे विद्वानों ने अनेक नामों से अभिहित किया है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से मुझे इस काल पर शोध करने का अवसर मिला है और 'आदिकाल का हिन्दी जैन साहित्य' विषय पर एक अधिनिबन्ध प्रस्तुत कर चुका हूं। मुझे इस काल के साहित्य के सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं कहना है, समय आने पर उससे आदिकालीन साहित्य के अनुसंधित्सु स्नातकों को पर्याप्त सन्तोष होगा। यहाँ तो केवल अपनी इस प्रस्तुत कृति के सम्बन्ध में थोड़ा सा परिचय मात्र दे रहा हूं।

आदिकाल की कृतियों में, यूं तो अनेकों प्रसिद्ध काव्य रूप हैं। काव्य रूपों से मेरा तात्पर्य साहित्य को उन प्रसिद्ध विधाओं से है, जिसमें अनेक प्रबन्ध काव्य लिखे गए हैं। ऐसे ही काव्यों में एक अति प्रसिद्ध काव्य रूप है "रास"। हिन्दी साहित्य के इस तथाकथित 'वीर गाथा काल में' इस साहित्य के इतिहासकारों ने अनेक रासों की ओर इंगित किया है। जिन पर कई बार चर्चाए हुई हैं और उनसे विद्वानों ने कई निर्णय लिए हैं पर कुल मिला कर आद्यावधि यह निष्कर्ष निकला कि तथाकथित *वीर गाथा काल में कोई भी ऐसी रचना नहीं हैं जिनके आधार पर इस काल का* नामकरण 'वीर गाथा काल' किया जाय। खैर इस तरह यह चर्चा भी पुरानी हुई हम्मीर रासो, वीसल देव रासो, परमाल रासो, तथा पृथ्वोराज रासो, प्रभृति, रास काव्यों की प्रामाणिकता भी संदिग्ध हो गई और अभी भी ये कृतियाँ शोध का विषय बनी हुई हैं। कालान्तर में सम्भव है इनके सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य स्थापित किये जायें। हमें उनकी प्रतीक्षा है। पर तब तक आदिकाल के सम्बन्ध में जो नया साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसमें उपलब्ध रास-काव्यों की क्या स्थिति है; विद्वानों का ध्यान अपने इस नये प्रयास की ओर आकर्षित करना चाहता हूं।

इन नये रास काव्यों का संक्षिप्त वर्णन-विवरण इस छोटी सी कृति में प्रस्तुत कर रहा हूं। ये उपलब्ध रास काव्य आदिकाल के हैं। इन रासों ने आदिकाल के साहित्य की प्राचीनतम निधि को सुरक्षित रखा है। इन रास कृतियों के लिये मुक्त-कण्ठ तथा पूर्ण दृढ़ता से इसलिये भी कहना चाहता हूं कि इनकी प्रामाणिकता, रचना-काल और रचनाकारों के सम्बन्ध में विवादास्पद स्थिति बिलकुल नहीं है ये प्रचलित लगभग सभी गत्यविरोधो से मुक्त हैं। इनकी प्रामाणिक मूल हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध हैं। गुजरात और राजस्थान के अनेक भंडारों में इन रास–कृतियों की प्रतियों का परीक्षण भली प्रकार से किया जाता है। साथ ही इनकी प्रवृतियां भी पूर्ण स्पष्ट है। उसकी स्थिति बहुत सुलझी हुई है। इनके लिये कहीं भी सन्देह को स्थान नहीं

दिखाई पड़ता । अतः इन्हें एक दम विश्वसनीय माना जा सकता है । वस्तुतः इन्हीं कृतियों के आधार पर इस काल का सम्यक् परीक्षण होना चाहिये ।

प्रस्तुत कृति में आए लगभग सभी 'रास काव्य' मेरे विचार से हिन्दी साहित्य के पाठकों के लिये एकदम नवीन तथा अज्ञात से हैं। यह इसलिये भी सत्य है कि इन पर आज तक किसी शोध-स्नातक ने आँख नहीं उठाई । इन में से कई प्रकाशित भी हुए पर उन्हें साम्प्रदायिक समझा गया हो अथवा किसी विद्वान् ने भाषा के कारण इन्हें हिन्दी के क्षेत्र में दूर का समझ लिया हो क्योंकि ये सभी प्राचीन राजस्थानी अथवा जूनी गुजराती के हैं । जो हो, ये रासकाव्य इसीलिये अपेक्षित पड़े रहे । आज जबकि हिन्दी साहित्य अपने प्राचीन गौरव की सुरक्षा के लिए इन कृतियां की ओर देखने लगा है, आज जबकि उसका परिसर इतना विशाल हो रहा है, आज जबकि वह उत्तर अपभ्रंश (Poit Abhramsa) की लगभग सभी कृतियों को अपनी कह कर सन्तोष की सांस ले रहा है ; मुझे हिन्दी जगत के सामने इनको एक ही कृति में एक साथ सामान्य परिचय दे कर रखते हुए पर्याप्त हर्ष का अनुभव हो रहा है । अब उत्तर अपभ्रंश की कृतियां राजस्थानी अथवा प्राचीन गुजराती की ही नहीं हिन्दी के आदि-काल की मान ली गई है, श्री राहुल सांकृत्यायन, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी; डॉ० माता प्रसाद गुप्त तथा गुजरात के अनेक विद्वानों ने इस ओर पर्याप्त प्रकाश डाला है । अतः ऐसी स्थिति में इन कृतियों का मूल्यांकन होन 1 चाहिये ।

एक प्रश्न और है उसका स्पष्टीकरण भी आवश्यक लग रहा है और वह यह कि इन कृतियों के अधिकांश लेखक कवि जैनी अथवा जैन धर्मावलम्वी हैं, इसलिये इनमें साम्प्रदायिकता अथवा धार्मिकता या उपदेशातमकता मात्र है । ऐसे सवाल कई बार उठाये गये हैं ; परन्तु इन सब बातों का निर्णय विद्वान् और सुधी पाठकों के लिये छोड़ रहा हूं····'कबहुं कि कांजी सीकरन्हि छीर सिन्धु बिलगाय' इस तरह के दोषरोपण तो साहित्य की अनेकों कृतियों पर किए जा सकते हैं । इसके सच्चे आलोचक तो वे हैं, जो सुनी सुनाई बातों पर विश्वास न कर इनके रूपस्वरूप के अन्तराल में प्रविष्ट होकर इसका नीर क्षीर विवेक करेंगे । मेरे विचार से धर्म और उपदेश इनमें केवल मात्र प्रेरणा के रूप में हैं । वस्तुतः ये रचनाऐ साहित्यिक संकल्प लिए हैं ; अन्यथा इस संक्रान्तिकाल की कोई स्थिति ही सामने नहीं आ पाती ।

"आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य" में मैं कुछ ही प्रसिद्ध रास कृतियों का विश्लेषण प्रस्तुत कर रहा हूं यों तो इन काव्यों पर और भी विस्तार में विचार किया जा सकता है । अनेक रचनाएं इसलिये छोड़ भी दी गई है । सामान्यतः इनसे एक सहज परिचय हिन्दी साहित्य के विद्वानों छात्रों, पाठकों तथा शोध प्रेमी मित्रों को हो बस इसी उद्देश्य से इनको सामने ला रहा हूं । इनमें कई रास ऐतिहासिक कई पौराणिक कथाओं पर आधारित तथा कई कवियों के जीवन गत सत्यों पर । आलोचना के साथ ही इन कृतियों में से तीन रास काव्यों ....... भरतेश्वर बाहुबली रास, पञ्च पाण्डव चरित रास तथा कुमार पाल रास .... का पाठ जैसा भी जिस रूप

में उपलब्ध हैं साथ में दे रहा हूं ताकि तत्कालीन अन्य लौकिक रचनाओं के साथ इनकी भी गणना हो सके। इन काव्यों की आलोचना का अधिकांश भाग मेरे शोध ग्रन्थ में संगृहीत है। केवल कुछ कृतियों का विवरण तथा रासों का पाठ इसमें और जोड़ कर प्रस्तुत कर रहा हूं। इन कृतियों के एतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक सभी पहलुओं पर मैंने यथा-सम्भव प्रकाश डालने का प्रयास किया है, फिर भी कई महत्वपूर्ण तथ्यों पर शायद चिन्तन नहीं हो सका हो; उनके लिये पाठकों के सुझावों का विनम्रता से सदैव स्वागत करूंगा।

रास काव्यों के ये पाठ मुझे प्रकाशित तथा कठिनाई से उपलब्ध होने वाली कृतियों से मिले हैं। सभी रचनाओं का पाठ इस छोटी सी कृति में देना सम्भव भी नहीं था। यों इन पाठों में पाठविज्ञान के जिज्ञासु स्नातकों के लिये पर्याप्त सामग्री है ऐसा मेरा विश्वास है। इनका पुर्ननिर्माण भी एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। आशा है, वे इस ओर प्रेरित हो कर ऐसी अनेकों अ-प्रसिद्ध, अज्ञात तथा भंडारों में दबी पड़ी आदि कालीन कृतियों के पाठोद्धार कार्य को वैज्ञानिक रूप से सम्पादित कर प्रकाशित कराने में रुचि लेगें।

इन कृतियों को पुस्तक रूप देने का सारा श्रेय भाई उमराव सिंह मंगल को है जिन्होंने अथक परिश्रम से इसका प्रकाशन किया है इस के लिये उनका अनुग्रहीत हूं। श्रद्धेय गुरूवर डॉ० माताप्रसाद गुप्त इसके मूल में रहे हैं। विद्वद्वर श्री अगरचन्द नाहटा की कृपा से इन में से अनेक कृतियां तथा उनके पाठ उपलब्ध हुए हैं। 'भरतेश्वर बाहुबली रास' तथा 'कुमार पाल रास' का पाठ उन्हीं के सौजन्य से उपलब्ध हुआ तथा श्री डा० भोगीलाल सांडेसरा डायरेक्टर, आरिएन्टिल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, ने 'पंच पाण्डव चरित्र रास' का पाठ प्रकाशित-करने की अनुमति दे कर उत्साह बढ़ाया है, इस के लिये मैं इन दोनों विद्वानों का हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूं। रासों की आलोचना के लिये जिन राजस्थानी तथा गुजराती विद्वानों की कृतियों से जो सहायता मिली है उसके लिये उनका हार्दिक धन्यवाद करता हूं। साथ ही साथ अपने स्नेही मित्र प्रो० हरिराम आचार्य श्री मंगल तथा प्रो० एच. एल. भारद्वाज का आभारी हूं जिन्होंने इस कृति के प्रूफ देखे हैं, प्रिय चन्द्र प्रकाश तिवारी, करूणा एम० ए०, प्रकाश वाजयेयी तथा शील सचेती सभी की आत्मीयता ने इस कार्य में प्रेरणा दी, और यह प्रयास सामने आ सका। यों तो सारा ही श्रेय 'मंगल प्रकाशन' को है। यदि हिन्दी साहित्य के आदिकाल में ये रास काव्य कुछ श्री वृद्धि कर सके और सुधी पाठकों को परितोष दे सकें, तो प्रयास को प्रेरणा उपलब्ध होगी।

'हरीश'

४. लक्ष्मी राम का बाग,
मोती डूंगरी रोड़, जयपुर

अनुक्रम

# विषयप्रवेश

**आदिकाल :—**

हिन्दी साहित्य का आदिकाल विभिन्न काव्य रूपों के उद्भव और विकास से सम्बद्ध है। काव्य रूपों की विभिन्नता इस साहित्य की मौलिकता है। यों तो अपभ्रंश साहित्य में अधिकांश काव्य रूपों की श्रृंखला के बीज विद्यमान हैं, पर उत्तर-अपभ्रंश या पुरानी हिंदी के इस साहित्य ने काव्यरूपों के इतिहास में नवीन क्रांति उपस्थित की है। इस तरह एक ओर आदिकाल में जहां विभिन्न प्रकार की काव्य प्रवृत्तियों का समुचित विकास और पूर्ववर्ती साहित्यिक विधाओं की परम्परा का निर्वाह मिलता है, दूसरी ओर काव्य के विभिन्न रूपों में असाधारण विविधता के दर्शन होते हैं। अद्यावधि विद्वानों एवं आलोचकों ने काव्य रूपों को खण्ड-काव्य, महा-काव्य और प्रवन्ध-काव्य आदि का रूप देकर ही उनका अध्ययन किया है परन्तु आदिकालीन उपलब्ध साहित्य ने काव्य रूपों की दृष्टि से नये मोड़ प्रस्तुत किये हैं। ये काव्य रूप छन्द प्रधान भी हैं और विषय प्रधान भी। यद्यपि ये काव्य खण्ड-काव्य, कथा-काव्य, एकार्थ-काव्य और प्रबंध काव्यों आदि के अन्तर्गत वर्गीकृत हो जाते हैं, पर विशुद्ध रूप में शैली और शिल्प की दृष्टि से इनका पूर्व कृत वर्गीकरण बहुत समीचीन नहीं प्रतीत होता। अस्तु—काव्य रूपों पर नये रूप में विचार किया जा रहा है। वस्तुतः आदिकालीन साहित्य में जिस विशाल संख्या में काव्य रूप मिलते हैं वह अपने आप में आदिकाली की एक बहुत ही बड़ी उपलब्धि है। इस काल में शताधिक से अधिक काव्य रूप उपलब्ध हुए हैं।[1] जिन पर विस्तार में अन्यत्र विचार विश्लेषण गया है यहाँ उन विशिष्ट काव्य रूपों में से केवल मात्र "रास" पर ही विचार किया जा रहा है। यों तो शैली की दृष्टि से रास संज्ञक रचनाओं को खंड-काव्य, प्रबंध-काव्य आदि के अन्तर्गत रखकर उनका मूल्यांकन प्रस्तुत किया जा सकता है परन्तु ऐसा करना बहुत संगत नहीं प्रतीत होता, वस्तुतः काव्य रूपों के अन्तर्गत आने वाले जो अनेक रूप या विधाएं हैं, उनसे प्रत्येक पर स्वतन्त्र रूप से अध्ययन अपेक्षित है। रास, फागु, चरित, चउपई, प्रबंध, पवाड़े, विवाह-वेलि,

१— देखिए लेखक का 'शोध प्रवन्ध आदि काल का हिन्दी जैन साहित्य' अप्रकाशित (इलाहावाद यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में संग्रहीत)।

चर्चरी आदि अनेक नाम उदाहरणार्थ दिए जा सकते हैं जिनका विस्तार से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ हम उनमें से रास काव्य रूप को ले रहे हैं।

'रास' के शिल्प पर विचार करने के पूर्व उसकी पूर्व प्रचलित परम्परा का क्रमिक अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है। जो इस प्रकार है।

**रास परम्पराः—**

रास परम्परा अत्यन्त प्राचीन परम्परा है। इस परम्परा को सम्पन्न बनाने वाली रास संज्ञक रचनाएं बहुत ही विशाल रूप में प्राप्त हुई हैं। रास परम्परा का अध्ययन करने के लिए इसे तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है :—

१. संस्कृत काल या प्रारंभिक काल। २. अपभ्रंश काल। ३. अपभ्रंशेतर काल।

इन तीनों कालों में रास के मान दण्डों में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं, तथा इसी परम्परा में रास, रासक, रासा और रासो आदि कई शब्दों का निर्माण हुआ है। रास साहित्य के इस विकास का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण व रोचक प्रतीत होता है। भारतीय साहित्य में जहाँ तक 'रास' शब्द की उपलब्धि का प्रश्न है, यह बहुत ही प्राचीन लगता है। संस्कृत काल में 'रास' शब्द का परिचय पुराण साहित्य से ही उपलब्ध होने लगता है। रास परम्परा के इन तीनों कालों को दृष्टि में रखते हुए रास के तत्कालीन स्वरूपों, विद्वानों द्वारा की गई उनकी विभिन्न परिभाषाओं तथा रास के उत्तरोत्तर बदलने वाले मान दण्डों का अध्ययन करने में संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों व अन्तर्वाह्य स्रोतों से बड़ी सहायता मिलती है।

**संस्कृत साहित्य में रास की स्थितिः—**

संस्कृत साहित्य में 'रास' की स्थिति का अध्ययन अपेक्षित है। वस्तुतः सर्व प्रथम भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में रास शब्द का उल्लेख किया है। रास का सम्बन्ध क्रीड़ा नृत्य से स्पष्ट करते हुए उन्होंने इसे 'क्रीड़नीयक' कहा है।[१]

भास के बालचरित नाटक में भी रास के समानार्थी शब्द 'हल्लीसक' का प्रयोग मिलता है जिसमें गोप-गोपिकाओं का साथ-साथ क्रीड़ा करने का उल्लेख है।[२]

---

१—नाट्य-शास्त्र, प्रथम अध्यायः 'क्रीड़नीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्'

२—देखिए—भासनाटक चक्रमः सी. देवधर। पृ० ५६८-८० का संकर्षण-दामक; दामोदरः आदि का यह संवाद—

दामक :—आम भट्टा पव्व परणगुद्धा आ अदा।

दामोदर :—घोष सुन्दरि। वनमाले। चन्द्र रेखे। मृगाक्षि। घोष वास स्यानानुरूपो यं हल्लीसकां नृत्तबन्ध उप-युज्यंताम्।

"हरिवंश पुराण"[1] और विष्णु पुराण[2] में भी "रास" शब्द की ओर कुछ संकेत मिल जाता है। धनंजय ने अपने दशरूपक में रास पर प्रकाश डाला है।

महाराज भोज के सरस्वती कण्ठाभरण और श्रृंगार प्रकाश में भी रास संज्ञा का उल्लेख मिलता है।

इस उक्त विवेचन में हल्लीसक शब्द विशेष द्रष्टव्य है। हल्लीसक शब्द के साथ भास के नाटक और पुराण साहित्य में गोप-गोपिकाओं का साथ होना और क्रीडा करना तो स्पष्ट होता है पर अन्य संगीतात्मकता अथवा उसके अन्य किसी शिल्प जन्य वैशिष्ट्य का उल्लेख नहीं मिलता। अतः यह लगता है कि इन ग्रन्थकारों के समय रास क्रिया शारीरिक अवयवों से सम्बन्धित जन-नृत्य या क्रीड़ा मात्र थी। वस्तुतः उस समय रास का सीधा सम्बन्ध पुरातन नृत्य मात्र से रहा होगा। सम्भावना है कि आदिम नृत्य भी इसी रास का एक रूप रहा होगा। यह भी सम्भावना है कि संगीत के तत्कालींन शास्त्रीय नियमों के विधान का अभाव ही इसका मूल कारण रहा हो। जो भी हो, यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि उस काल में यह जन-नृत्य या वन्य-नृत्य अथवा लोक-नृत्य-विशेष के रूप में प्रचलित रहा होगा। एक आलोचक ने इसी सम्भावना पर रास शब्द का अर्थ जोर से चिल्लाना स्पष्ट कर उसे जंगली या आदिम पुरुषों की शारीरिक क्रिया या वन्य-नृत्य बताया है।[3]

१–देखिये :–हरिवंश पुराण; विष्णु पर्व, अध्याय २०, के ये उद्हरण:–

(क) एवं स कृष्णों गोपीना चक्रवालैरलंकृतः।

(ख) चक्रवालै ? मण्डलै ? हल्लीसका क्रीड़नम एकस्य पुंसौ वहुभिःस्त्रीभिः क्रीड़न सैव रास क्रीड़ा।

इस विवेचन से विद्वान् टीकाकार ने "चक्रवाल" शब्द का अर्थ सम्भवतः 'रास' किया है।

२–विष्णु पुराण, (गीता प्रेस) ५।१३।४७, ५० के ये उद्हरण।

(क) ररास रासगोष्ठीभिरुदार चरितो हरिः।

(ख) हस्तेन गृह्य चैकेकां गोपिनां रासमण्डलम्।

३–देखियेः-टाइम्स आफ संस्कृत ड्रामा, पृ० १४१-४४ में श्री कंकड़ की यह उक्ति- It is not to be derived from रस, but from रास a root which means to cry alone, which may referm to be very primitive form of this dance when the proportion of music & artistic movements may not have been still realistic and when it must have been practised as wild dance".

हल्लीसक शब्द की व्याख्या व व्यवंहृति अनेक संस्कृत के विद्वानों ने की है। रास में गीत, नृत्य, क्रीड़ा व संगीत का समन्वय सिखाने वाले अनेक विद्वानों ने रास के शिल्प का विवेचन किया है जिससे रास के उत्तरोत्तर परिवर्तित होने वाले रूप का पर्यवेक्षण किया जा सकता है। वस्तुतः यह हल्लीसक शब्द विभिन्न विद्वानों के द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया गया है जिससे "रास" में अनेक नवीन तत्वों का समावेश होता है उनका संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है।

बाणभट्ट ने अपने समय तक रास में नृत्य की आयोजना होना बताया है। इस तरह के विशिष्ट नृत्य के आयोजनों के प्रमाण हर्ष चरित[1] में अनेक मिल जाते हैं। रास के इन मण्डलों को हरिवंश पुराण के टीकाकार ने जिस प्रकार "चक्रवाल" की संज्ञा दी है उसी प्रकार बाणभट्ट ने रासक मण्डल के लिए आवर्त्त[2] शब्द को उपमान चुना है। इस प्रकार इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि बाण के समय में "रास नृत्य" जन साधारण में प्रचलित हो गया था। अतः बाणभट्ट ने इसे एक "उपरूपक-विशेष" कहा है।

काम के सूत्र प्रणेता वात्स्यायन ने भी हल्लीसक अथवा रासक नृत्य के साथ गान के आयोजन का भी उल्लेख किया है।[3]

भावप्रकाशकार शारदातनय ने रासक में नायिकाओं के रासक के आयोजन में नायिकाओं की संख्या का विधान किया है। उनका कहना है कि पिण्डी बन्ध के साथ नायिकाएं १६, १२ तथा ८ की संख्या में जो नृत्य करती हैं, उसे रास कहते हैं।[4]

अभिनव गुप्त ने "मण्डल" में जो नृत्य किया जाये, उसी को हल्लीसक कहा है।[5] रासक को उप रूपक बताते हुए बाणभट्ट ने लिखा है कि डोम्बिका-भाण-प्रस्थान-भाणिका-प्रेरण-शिङ्गक-रामा क्रीड़ हल्लीसक श्री गदित रासक गोष्ठी प्रभृतीनि-गेयानि।[6] इस परिभाषा से ये तथ्य स्पष्ट होते हैं:—

१—सामान्यतः ये रूपक गेय हैं।
२—इन रूपकों में से रासक भी एक रूपक हैं।

---

१—हर्ष चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन—चतुर्थ अध्याय।
२—वहो, सवर्त इव रासक मण्डले। सरोमांच इव भूषण मणि करणैः।
३—हल्लीसक क्रीड़नकैर्गोवनैः।
४—षोड़श द्वादशाष्टौ व यस्मिन्नृत्यन्ति नायिका : पिण्डी बन्धादि विन्यसै ?
रासकं तदुदाहृतम—भावप्रकाश—शारदातनय।
५—मण्डलेनतुयन्नृत्यं हल्लीसकमिति स्मृतम्।
६—देखिये वाग्भट्ट कृत काव्यानुशासन, पृ० १८०।

३–इनमें संगीत तत्व का पूर्ण समावेश है।

४–नृत्य और अभिनय भी इनमें प्रधान हैं।

हल्लीसक के विषय में एक संकेत यशोधर कृत काम शास्त्र की जयमंगला टीका में मिल जाता है; वह 'मंडल' में होने वाले स्त्रियों के उस नृत्य को जिसमें एक नायक होता है, हल्लीसक कहता है और प्रमाण में वह गोपियों के हरि का उदाहरण देता है।[1] हेमचन्द्र के काव्यानुशासन (पृ० ४४५–४४६) में हल्लीसक और रासक शब्द का उल्लेख मिल जाता है। उपदेश रसायन् रास के टीकाकार ने रासक के शिल्प की सरलता के सम्बन्ध में बतलाते हुए लिखा है कि चर्चरी और रासक ये प्राकृत प्रवन्ध इतने सहज व सरल हैं कि कोई भी विद्वान् पुरुष इन पर टीका नहीं लिखना चाहता।[2]

श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी तो प्रसिद्ध ही है।[3] अब्दुल रहमान के संदेश रासक में रास की जगह रासय या रासउ मिलते हैं जो सम्भवतः रासक का ही अपभ्रंश है। शुभंकर ने गोप क्रीड़ाओं को ही रास कहा है।[4] और जयदेव तो 'रासे हरिरिह सरस वसंते' तक कह डालते हैं।

एक नया तथ्य उपदेश रसायन रास के टीकाकार ने रास को राग या गीतों की भांति गाया जाने वाला कहकर भी बताया है। जिससे स्पष्ट हो जाता है कि प्राकृत भाषाओं में रची गई चर्चरी और रासक संज्ञक प्रवन्ध प्रर्याप्त सरल होते थे और वे देश्य भाषा में अनेक रागों में गाये जा सकते थे। टीकाकार ने उसमें अनेक छंदों का होना भी बताया है।[5] रासक शब्द के लक्षणों का विस्तृत विवेचन वाग्भट्ट ने और स्पष्टता से किया है।[6] जिसके अनुसार ये परिणाम निकाले जा सकते हैं:—

१–रासक समृण रचना थी।

२–इसमें अनेक नर्तिकाएं होती थी।

---

१–मण्डलेन च यतस्त्रीणां नृत्तं हल्लीशकं तु तत
नेता तत्र भवदेको गोप स्त्रीणां यथा हरि।

२–चर्चरी रासक प्रख्ये प्रवन्धे प्राकृते किल,
वृत्ति प्रवृत्ति नाधत्तै प्रायःकोऽ अपि विचक्षण।

३–श्रीमद्भागवत–दशमः स्कन्धः।

४–"केचिद्भ्वदन्ति गोपानां क्रीड़ारासक मत्यपि"

५–अत्र पद्धटिका वन्धे मात्रा षोपश पादगाः
अयमसर्वेपु रागेपु गीयते गीतकाविदे।

६–अनेक नर्तकी योज्यं चित्र ताल लयान्वितम्
आचतुः पष्टि युगलाद्रासकं मसृ-णोद्धते-वागभट्ट; काव्यानुशासन, पृ. १८०।

३–यह उद्धत गेय रूपक था ।
४–अनेक तालों से समन्वित होता था ।
५–इसमें एक निश्चित लय होती थी ।
५–क्रीड़ा करने वाले युगलों (जोड़ियों) की संख्या ६४ तक होती थी ।

गेय रासक के विकसित स्वरूप को उस काल में "राग काव्य" की संज्ञा भी दी गई थी ।[1] शौरसेनी प्राकृत में भी रास साहित्य का उल्लेख मिलता है, परन्तु यह आधार युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता ।[2]

उक्त समस्त विवेचन हल्लीसक, रास और रासक शब्दोंके संस्कृत-कालीन स्वरूप अर्थ और परिभाषा को समझने के लिये किया गया है । 'रास' शब्द किस प्रकार कालान्तर में अपना शिल्प परिवर्तन करता गया इसके क्रमिक विकास के अध्ययन में सुविधा हो इसी दृष्टि से संस्कृत काल के प्रभरत्र, विद्वानों के विविध उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत करना उचित प्रतीत हुआ ।

"रास" के संस्कृत काल में जहाँ बाण के हर्ष–चरित में रास का श्लील विवेचन मिलता है वहाँ 'अश्लील रासक पदानि' का उल्लेख भी आता है । उस काल में गणिकाओं द्वारा उनके कलाकुशल दरिद्र प्रेमियों के लिए जिनका विशेष ना विट था, अश्लील पद गाने का उल्लेख है ।[3] परन्तु डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने एक दूसरी बात हल्लीसक के सम्बन्ध में कही है कि उसका उद्गम इस्वी सन् के आस-पास यूनान के नृत्य विशेप–इलीशियन–से हुआ है । कृष्ण के रास नृत्य और हल्लीसक नृत्य इन दोनों की परम्पराओं में सम्भवतः किसी समय परस्पर संबंध हो गया ।[4]

पर यह तथ्य कहाँ तक सत्य है, यह नहीं कहा जा सकता, इस सम्बन्ध में अन्य कोई अन्त–र्बाह्य प्रमाणों और जनश्रुतियों का भी अभाव है । इन दोनों बातों में हल्लीसक के उद्गम वाली बात तो संदिग्ध ही दिखाई पड़ती है हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि रास-नृत्य का सम्बन्ध सम्भवतः किसी जंगली जाति अथवा गोप जाति से अथवा अहीरों आदि से हो गया हो । जो भी हो, अब तक इतना अवश्य स्पष्ट हो गया है कि बाण के समय तक रास

---

१–लयान्तर प्रयोगेण रागेश्वापि विचित्रतम्
नानारसं सूनिर्वाहयं कथंकाव्यं इति स्मृतम्-हेमचन्द्र; काव्यानुशासन, पृ. ४४९
२–देखिये गुजराती एण्ड इट्स लिटरेचर–श्री के० एम० मुन्शी, पृ० ८७ ।
३–कोकिला इव मद काकली कोमलालापिन्यो विटानां कर्णामृतान्य श्लील रासक पदानि गायन्त्यः । देखिए:–हर्षचरित्र एक सांस्कृतिक अध्ययन ।
४–वही ग्रन्थ, पृ० ३२–३३ ।

में नृत्य के साथ गेय तत्व पूर्णतया प्रचलित हो गया था और हल्लीसक या रासक के शिल्प में उक्त सभी विद्वानों के विचारों में युगलों, लयों तालो और गोप गोपियों का सम्बन्ध परिलक्षित होता है। अतः रास के अपभ्रंश काल के पूर्व नृत्य क्रीड़ा रूप और गेय रूप ही अधिक प्रचलित प्रतीत होते हैं। श्री मद्-भागवत में वर्णित कई स्थल रास के गेय रूप की पुष्टि करते हैं। रास शब्द का प्रयोग भी द्रष्टव्य है[1] तथा कुछ श्लोकों में तो रचनाकार ने रास में संगीत व रागों का उल्लेख भी कर दिया है। ध्रुपद राग पर भागवतकार ने उस प्रसंग में प्रकाश डाला है।[2]

**परवर्ती काल और रास :—**

संस्कृत काल के पश्चात् रास में इन तत्वों का समावेश किन अंशों में बना रहा, यह कहना बहुत कठिन है तथा साथ ही यह भी नहीं जाना जा सकता कि उसके शिल्प में उक्त तत्वों से इतर किन तत्वों का समावेश हुआ, और वह भी किस अनुपात में, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि आगे की कई शताब्दियों तक, (जब तक कि रास, रासक, अपभ्रंश काल में नहीं पहुँचे) उसमें उक्त दोनों तत्वों का समावेश आंशिक अथवा स्पष्ट अस्पष्ट अनुपात में अवश्य मिलता रहा है। संस्कृत काल के इन रासों की परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी राजस्थान में उपलब्ध विक्रम सं० ९६२ का 'रिपुदारण रास' है।[3] जो अद्यावधि उपलब्ध रासों में सबसे पुराना है और यह रास संभवतः हेमचन्द्र से भी बहुत पहले का है। रासक[4] के शिल्प पर राजस्थान में उपलब्ध होने वाले रासों में प्राचीनतम होने से यही अच्छा प्रकाश डालता है। पर अभिनय, नर्तन और गान ये तीन तत्व रिपुदारण में भी मिलते हैं। अतः राजस्थान में मिलने वाले रासों में प्राचीनता की दृष्टि से भले ही इस रास का महत्व हो, पर शिल्प में इसका कोई नवीन योगदान नहीं लगता।

---

१—श्री मद्भागवत; दशम स्कन्ध, तेंतीसवें अध्याय के निम्न श्लोक :—
(क) तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः। २।
(ख) रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः। ३।
(ग) सप्रियाणामभूच्छब्दसतुमुलो रासमण्डले॥६॥

२—(क) स्विद्यन्मुख्यः कबररसनाग्रन्थय कृष्णववो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघ चक्रे विरेजुः। वही, श्लोक सं० ८।
(ख) तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बहवदात्—वही, श्लोक सं० १०।

३—देखिये:—मरुभारती, वर्ष४, अंक २, में 'रिपुदारण रास' निबंधः डॉ० दशरथशर्मा, पृ० ५७।

ऐसी स्थिति में अपभ्रंश व अपभ्रंशेतर ये दो काल ही ऐसे हैं, जिनमें रासों के अनेक प्रकार मिलें। अपभ्रंशेतर साहित्य में विशाल संख्या में विविध मान दण्ड प्रस्तुत करने वाले रास ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। जिनके शिल्प में संस्कृत तथा, प्राकृत के रास ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक प्रगति व नूतनता है।

उपदेश रसायन रास के ३६ वें पद्य में "ताला रासु" 'लकुटा या लड़ड़ा रासु' नामक दो प्रकार के रासों का उल्लेख मिलता है।[1] कर्पूरमंजरी में भी 'तालारासु' और 'लड़ड़ा रासु' का संकेत मिलता है।[2] डॉ० जे० पी० वॉगेल ने ग्वालियर बाग की एक पेंटिंग में चित्रित 'लड़ड़ा रास' का वर्णन किया है।[3] इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि अपभ्रंश काल में रास क्रीड़ा में तालियों और डंडियों से खेलने की प्रथा भी प्रचलित हो गई थी।

कालान्तर में रास क्रीड़ा के सम्बन्ध में यह भी उल्लेख मिलता है कि जैन मंदिरों में श्रावक आदि लोग रात्रि के समय में तालियों के साथ (ताल देकर) रासों को गाया करते थे।[4] उसमें जीव हिंसा की सम्भावना के कारण रात्रि में ताला रास का निषेध किया गया है। इसी प्रकार दिन में पुरुषों का स्त्रियों के साथ लगुडा रास करने (डंडियों के साथ नृत्य करते हुए रास गाने) को भी अनुचित बताया गया है। जैन मन्दिरों में ये रास १४ वीं शताब्दी तक खेले जाते थे।[5] एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि उपदेशों के गेय रूपों को भी जो,

---

१–साहित्य संदेश; जुलाई १९५१, में रासो के अर्थ का क्रमिक विकास लेख डॉ० दशरथ शर्मा।

२–तालारासु विदिंति रयणिहिं दिवसिवि लड़ड़ा रसु सहुँ पुरिसिहिं–
उ० र० रा० छन्द ३६।

३–(क) खेलंती तालाणुगदप्प आओ तुहगणे दीसदि दण्ड रासो (ख) लड्डाडा रसु जहि पुरिसुवि दितिउ वारियइ चर्चरी छंदे। कर्पूर मंजरी ४।१०–२०।

४–We now come to the fourth Scene plate D. consisting of a double group of female musicians. The left hand group comprises seven women standing around an eight figure, evidently a dancer. .... The next three musicians are each engaged in beating a pair of wooden sticks called danda in Hindi and Tipri in Marathi. Painting by Dr. J. Ph. Vogle page 49-51.

५–देखिये:–ना० प्र० पत्रिका; वर्ष ५८, अंक ४, पृ० ४२०, श्री अगर-चन्द नाहटा का लेख।

कि जैन मुनि प्रस्तुत करते थे 'रास' संज्ञा दी जाने लगी। उपदेश रसायन रास में जिनदत्त सूरि के अनेक गेय उपदेश रास बन गये हैं। स्त्री और पुरुषों के एक साथ रास नहीं खेलने के जो उल्लेख मिलते हैं।[1] उनसे यह बात तो स्पष्ट हो ही जाती है कि रास क्रीड़ा अपभ्रंश और अपभ्रंशेतर कालों में स्त्री पुरुष दोनों में समान उत्साह के साथ सम्पन्न होती थी और रास विशेष अवसरों पर जनता उल्लसित होकर खेलती थी। अतः नृत्य और गीत तत्व रासों में समान अनुपात से ११ वीं शताब्दी तक तो देखने को मिलता है।

यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि नृत्य और गीत में से कालान्तर में रासों में गीत मात्र ही क्यों रह गया ? नृत्य क्रिया क्यों शिथिल हो गई ? इसका कारण जैन रासो रचनाओं के शिल्प का परिशीलन करने पर मिल जाता है। अपभ्रंशेतर काल में जैन मुनि जिन उपदेशों को देश्य भाषा में जनसाधारण को गा-गा कर सुनाते थे, उनकी रसीली गीति और चर्चरी संज्ञक उपदेशात्मक रचनाएं धीरे-धीरे रास बनती गईं। जैन साधकों को शम प्रधान जीवन बिताने से विशेष उल्लास और राग, रंग, नृत्य, अभिनय से वैराग्य रखना पड़ता था अतः नृत्य का तत्व धीरे धीरे उपेक्षित होने लगा। अनुश्रुतिबद्ध परम्परा के कारण ये गीतियां इतनी घनीभूत होकर प्रचलित हुईं, कि जन मानस रसमय हो उठा और नृत्य को लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे। अन्यथा कर्पूर मंजरी के विचित्र बन्ध में ताल, लय, प्रकम्पन के आधार पर नृत्याभिनय करती हुई नायिकाओं का वर्णन मिलता है।[2] इन नर्तकियों की समबाहु, समाभिमुख आदि अनेक भिन्न-भिन्न मुद्राओं का भी उल्लेख मिलता है।[3] वस्तुतः ११वीं शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते रास 'गेय काव्य' मात्र रह गया। क्योंकि इन गीतियों और चर्चरियों को ही जनसाधारण में अत्यन्त अधिक प्रचलित देखकर जैन मुनियों ने उपदेश का माध्यम चुना और ये चर्चरियां और गीतियां इतनी अधिक प्रसिद्ध हुई, कि इनके नामों से विभिन्न छन्द विशेषों का निर्माण हो गया। कालान्तर में चर्चरी और गीत नाम से स्वतन्त्र छन्द ही बन गये। अब जनता इन रासों को खेलने की अपेक्षा श्रवण करने में अधिक रस

---

१—देखिए:—अपभ्रंश काव्यत्रयी; श्री लालचन्द भगवान गांधी, पृ० ३६।

२—साहित्य संदेश; जुलाई १९५१, में डॉ० दशरथ ओझा का 'रासो के अर्थ का क्रम विकास'—शीर्षक लेख।

३—कर्पूर मंजरी; ४।१०-११ का यह उद्धरण:—
समं ससीसा सम बाहुहत्था रेहा विसुद्धा अवराउदेंति।
पंतीहिं दोहिं लअताल बंधं अपरोप्परं साहिमुही हुवंति।

लेने लगी और इसीलिए श्रव्य काव्य की उत्पत्ति का उल्लेख ११वीं शताब्दी कहा गया है।[1] विद्वान् आलोचक ने इस कथन की पुष्टि भी की है कि उन्हीं उपदेश बहुल रासों के कारण गेय रास केवल अन्ततः श्रव्य राग मात्र रह गये, नृत्य से उनका सम्बन्ध सर्वथा विछिन्न हो गया।[2]

११वीं शती तक तो रास रासक की यह स्थिति रही। पर हेमचन्द्र के समय तक जन मानस ने रास को रूपक का रूप दे दिया और ऐसा लगता है कि तत्कालीन वस्तु स्थिति को देखकर ही हेमचन्द्र ने प्रेक्ष्य काव्य के अन्तर्गत रासक को गेय रूपक के भेदों में से एक माना है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। मसृण, उद्धत और मिश्र ये तीन भेद थे। इन तीनों के अन्तर्गत ही उन्होने डोम्बिका, भाण, प्रस्थान, शिग, भाणिका, प्रेरण, रामाक्रीड़, हल्लीसक, रासक, गोष्ठी आदि उपभेद किये हैं। इनमें रासक और हल्लीसक उद्धत गेय रूपक के अन्तर्गत आते हैं। इनमें उद्धत तत्वों का समावेश अधिक था और मसृण का आंशिक। अतः अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि रासक और हल्लीसक में उद्धत तत्व की अधिकता हो जाने के कारण उसकी क्रीड़ा में या रास जन्य शिल्प में दर्प या वीरत्व का समाविष्ट हो गया होगा और ज्यों-ज्यों उसकी रण प्रधान प्रवृत्तियां बढ़ती गईं, ये रासक वीरत्व प्रधान काव्य बनते गये और दूसरी ओर वे रासक जिनमें मसृणता का तत्व आंशिक था धीरे धीरे कोमलता प्रधान होते गये। फलतः कोमल प्रवृत्तियों वाले ये रासक 'रास' रूप में चलते रहे और यह परम्परा आज भी हमें 'फागु' के रूप में सुरक्षित मिलती है।

वस्तुतः जन रुचि के इस बदलते हुए प्रभाव के कारण रासक में उद्धत तत्व की वृद्धि, गेयता तथा नृत्य होने से वह एक गेयता प्रधान उपरूपक हो गया।[3] अतः १२वीं शताब्दी से ही रास उपरूपक माना जाने लगा। नाट्य दर्पण जैसे प्रसिद्ध ग्रंथों को देखने पर उसमें 'नाट्य रास और रासक' का उल्लेख मिल जाता है।[4] रासक में अभिनय की प्रधानता बढ़ी और साहित्य-दर्पण में भी नाट्य रासक और रासक शब्दों का उल्लेख देखकर यह कहा जा सकता है कि उस समय जनता में रासक का रूपक के रूप में पर्याप्त प्रचलन हो गया था। रत्नावली नाटिका में भी 'रास' को गीति नाट्य की संज्ञा दी गई है।

१—साहित्य संदेश; जुलाई १९५१, 'रासो के अर्थ का क्रमिक विकास' लेख।

२—वही अङ्क, वही लेख।

३—हिन्दी साहित्य का आदिकाल; डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० ६०-६१।

४—नाट्य दर्पण (प्राच्य-विद्या मंदिर बड़ोदा संस्करण), पृ. २१३-१६।

पर यहाँ तक रास के पास कोई नया विषय नहीं था। वही नृत्य, गान और अभिनय ही घुमा फिरा कर उसकी विषय वस्तु बनता जा रहा था। अतः १२वीं शताब्दी ने विषय वस्तु के रूप में भी एक नई उत्क्रान्ति प्रस्तुत की। गीतियों में चर्चरी मूलक रास रचनाओं में धीरे-धीरे कथा तत्व का समावेश होने लगा। अतः कथा तत्व के आने से चरित्र-संकीर्तन बढ़ने लगा। विशेष रूप से अपभ्रंशेतर जैन रासों में ऋषभ देव, नेमीनाथ, महावीर, जम्बू स्वामी, गौतम स्वामी, स्थूलि भद्र, आदि के वर्णन मिलते हैं साथ ही श्रेष्ठ श्रावकों व दानवीर पुरुषों के ऊपर यथा-वस्तुपाल, तेजपाल, पेथड़, समरसिंह तथा तीर्थों आदि के नाम पर भी अनेक कथा प्रधान रास रचे गये जिनका विश्लेषण आगे के पृष्ठों में किया जायगा। अतः कवि इस कथा तत्व को विविध छंदों में बांधकर अर्थात् "रासाबंध" रूप देकर जनता के समकक्ष रखने लगे। अपभ्रंशेतर इन रासों में छंदों की इस विविधता के साथ-साथ रासाबंध के कारण "रास या रासा" आगे चलकर एक छंद ही हो गया। एतदर्थ यह कहा जा सकता है कि क्योंकि हर एक रास में गेय तत्व व रसमय तत्वों की प्रधानता रहती थी और इस गेय तत्व ने जब अनवरत वृद्धि पाई, तो यह समस्त रास ग्रन्थ एक रास छंद के लिए ही रूढ़ हो गये हों। वस्तुतः यह रासा छंद इतना प्रचलित हुआ कि तत्कालीन लोक काव्यों में भी इसका समावेश हो गया।

इस प्रकार १२वी शताब्दी तक में मिलने वाले इस विशाल जैन साहित्य के शिल्प, उसकी मुख्य प्रवृत्तियों, विशेषताओं और उसके विकास की कड़ियों का अध्ययन विभिन्न दृष्टियों से किया जा सकता है।

१—संगीत व नृत्य कला के रूप में।
२—छंदों की दृष्टि से।
३—विषय की दृष्टि से।
४—साहित्यिक रूपों की दृष्टि से।
५—धर्म की दृष्टि से।

१. जहाँ तक संगीत का प्रश्न है, उक्त विवेचन में हमने यह चर्चा की है कि अनेक युगों तक संगीत रास या रासक का एक प्रधान तत्व था। संस्कृत काल और अपभ्रंश काल के संधि युग में तो रास में उसका संगीत तत्व ही प्रधान होगया था इसके बाद भी जैन कवियो ने जो उपदेश प्रधान चर्चरियाँ और गीतियाँ गाई हैं, वे संगीत तत्व की उत्कृष्टता से रास का प्रचार करने व जन-कण्ठ हार बनने में सहायक हुई थी। एक आवश्यक बात यह भी है कि "रास" को रासा छंद बनाने मे सम्भवतः संगीत ने भी सहायता की हो। वस्तुतः उक्त

अनेक विद्वानों ने "गीत, लय और ताल" का महत्व रास या रासक के लिए स्पष्ट किया है। अतः रास और संगीत परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। श्री श्यामविहारी गोस्वामी रास को एक नृत्य विशेष मानते हैं तथा एक प्रकार का काव्य और रूपक भी।[१] आचार्य हेमचन्द ने तो रास काव्यों में विभिन्न राग-रागनियों की व्यवहृति होने से रास के विकसित स्वरूप को राग-काव्य ही कह दिया था। इसके अतिरिक्त "रास" जब गेय उप रूपक का प्रकार था, तो उसमें अनेक छोटे-छोटे उर्मि गीतों का समावेश आवश्यक था और वही उर्मि-गीत संगीत के अनूठे अंश थे। जो रास नाम से प्रयुक्त हो रहे थे। अतः स्पष्ट है कि रास ने संगीत कला के क्षेत्र को भी उन्नति की ओर बढ़ाया।

नृत्य कला का भी रास से पर्याप्त सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। नृत्य कला को प्रगति के चरम पर पहुँचाने वाला तत्व नर्तकी या नृत्यकार होता है और रास में नृत्य आवश्यक था। "अनेक नर्तकी योज्यं चित्रताल-लयान्वितम्" उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है। हल्लीसक और रासक को हेमचन्द्र ने देशी नाम माला (८-६२) तथा धनपाल ने पाइयलच्छी नाममाला ( शब्द ६७२ ) में सामान्यतः गोप-गोपियों को क्रीड़ा कहा है—"रासयम्मि हल्लीसो रासको, मण्डलेन स्त्रीणा नृत्यं" अतः स्त्रियों के नृत्य का उल्लेख स्पष्ट मिलता है। अब तक रास नाम से जानी जाने वाली सबसे प्राचीन क्रीड़ा कृष्ण गोपियों की ही रही है। उसी प्रकार नटराज शंकर भी अपने उद्धत ताण्डव नृत्य विभिन्न रूपों में स्वयं मुख्य नटेश्वर बनकर करते थे। परन्तु श्रीकृष्ण के इस मसृण रास का सम्बन्ध "लास्य" नामक नृत्य से भी पर्याप्त सम्बन्ध रखता है। आगे रास को लास्य भी बना दिया गया ऐसा उल्लेख मिलता है। रास या लास्य रसपूर्ण गीत मात्र ही नहीं, उसमें नृत्य के साथ अनेक वाद्यों का भी समावेश होता है। हेमचन्द्र सूरि के शिष्यों ने १२वीं शताब्दी में रचे नाट्य-दर्पण में लास्य के अवान्तर भेदों का उल्लेख किया है।[२] और जिसमें विभिन्न देश्य रुचि ही लास्य के भेद उपभेदों में परिवर्तन करती रही है। स्वयं शार्गंधर ने अपने ग्रन्थ संगीत-रत्नाकर में सं० १२०० ई० के आस-पास सौराष्ट्र की नारियों के रास नृत्य का उल्लेख किया है। अतः लास्य नृत्य भी कालान्तर में रास का स्थान ग्रहण किए रहा। लास्य की परम्परा में संगीत-रत्नाकर में वर्णित ऊषा-अनिरुद्ध, अभिमन्यु

---

१—देखिये 'त्रिपथगा' अक्टूबर; १९५७; वर्ष ३, अङ्क १, पृ० ५३ पर श्री श्याम विहारी गोस्वामी का 'स्वामी हरिदास और रासलीलानुकरण' शीर्षक लेख।

२—भाव भेदाद् लास्य भेदा बहुधा मन्यते बुधैः
तदैव नियमैर्हीनं देशे रुच्य प्रवर्तितम् —नाट्य दर्पण

की पत्नी उत्तरा का वड़ा हाथ रहा है। स्वयं अर्जुन के ऊपर भी नृत्य-रास के संस्कार का प्रभाव पड़े बिना नही रह सका। मणिपुर-नृत्य, लास्य-नृत्य का ही प्रकार माना जाता है। सौराष्ट्र और गुजरात प्रदेशों में लास्य या नृत्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन तथा स्वरूप में एक ही रही है। सौराष्ट्र में आज भी "रासड़ा लेवा" शब्द अब भी प्रचलित मिल जाता है। क्योंकि रास ने नृत्य कला को पर्याप्त सहायता दी है, अतः संगीत की भांति नृत्य व अभिनय रासक में एक दम अन्योन्याश्रित है। यह भी सम्भव है कि नृत्य की अनेक कलाएं वाद्य तथा संगीत-रासक में समाविष्ट रही हों। अतः रासक ने लास्य को व लास्य ने रासक को परस्पर वड़ा ही वल प्रदान किया है। अतः नृत्य-कला भी रासक का प्रमुख रूप रही है।[१]

**छंदों की दृष्टि से—**

रास का मूल्यांकन छंदों की दृष्टि से भी किया जा सकता है। ११वीं शताव्दी तक ये रास गेय रूप में इतने अधिक प्रचलित हुए कि "रास" नामक एक छंद विशेष ही वन गया। यों विद्वानों ने रास छंद में केवल एक छंद का विवेचन न कर अनेक छंदों का समाहार किया है। अतः यह स्पष्ट है कि रास परम्परा में अनेक रास छंदों की दृष्टि से भी लिखे जाते थे। उदाहरणार्थ संदेश रासक में प्रयुक्त रास छंद। इस प्रकार छंद की दृष्टि से रास या रासक कहलाने वाली रचनाओं के लिए छंद एक विचार-सारणि या कसौटी ही वन गया। ध्यान से देखने पर यह लगता ही है कि रासो ग्रन्थों में रासा छंद प्रमुखता से प्रयुक्त हुआ है। रास छंद के इस प्रभाव से तत्कालीन सभी काव्यों में यह विशेषता उनके नाम में ही आ गई और वहुधा वे नाम उनके शीर्षकों के अनुसार विविध काव्य-रूप वन गये—उदाहरणार्थ—पेथड़ रास, समरारास आदि में रास छंद प्रमुख है, तो चतुष्पदिका में चउपई और स्थूलि भद्र फागु तथा अनेक नेमिनाथ फागों में "फागु" छंद मिल जाता है। रास छंद का शास्त्रीय अध्ययन करने अथवा रासक के काव्य रूपों व शिल्प के विषय में हमें विरहाँक के "वृत्त जाति समुच्चय" (४।२६-३७) और स्वयंभू के छंद्स से वड़ी सहायता मिलती है। इन दोनों छंद शास्त्रियो ने रासक की परिभाषाएं दी है। विरहांक के अनुसार रासक अनेक अडिल्लों, दुव-हवों, मात्राओं, रड्डाओं और ढोसाओं से मिलकर वनता है। इसके अतिरिक्त मात्रा, रड्डा दोहा, अडिल्ला तथा ढोसा की उसने अलग परिभाषाएं दी है। सम्भवतः विरहांक ने रासको की दो प्रकार की लोकप्रियता वताई है तथा यह लिखा है कि—रास वन्ध के वाद ही उन्होने "रासा"

---

१—गुजराती साहित्य नां स्वरुपो; प्रो० म० र० मजूमदार, पृ० ४१३—१६।

नामक स्वतन्त्र छंद की परिभाषा दी है जिसकी कुछ मात्राएं डॉ० हरिवल्लभ भायाणी ने संदेश रासक की भूमिका में देकर दोहा, छड्डणिया, पद्धड़िया, घत्ता चौपाई, रड्डा, ओढसा, अडिल्ल आदि अनेक छंदों का बहुतायत से प्रयोग करने वाली रचनाओं को रासक नाम दिया है। इस प्रकार सभी परिभाषाओं में प्रयुक्त तथ्यों को कसौटी मान कर चलने में जब हम आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की रास रचनाओं में "रास" छंद को ढूंढते हैं तो हमें रास छंद इन लक्षणों से अलग ही छंद लगता है और इस स्वतन्त्र छंद का दोहा, ढोसा, अडिल्ल आदि छंदों से स्वतन्त्र रूप सिद्ध होता है तथा परस्पर कोई साम्य भी नहीं दिखाई पड़ता। अतः यही कहा जा सकता है कि इन विभिन्न छंदों की कृतियों को रासक नाम दे दिया जाता होगा। रासक और रास छंद के लिए अद्यावधि प्राप्त प्रमाणों के आधार पर इससे अधिक कुछ कहना बहुत संगत नहीं लगता, पर यह स्पष्ट है कि रासक और रास संज्ञक अनेक कृतियों में "रास" एक छंद विशेष के रूप में खूब मिलता है।

अपभ्रंशेतर काल में रासों के विषयों में विस्तार हुए। अनेक विषयों पर रास रचना हुई जिनमें से कुछ प्रमुख विषय अग्रांकित हैं :-

१-उपदेशमूलक (यथा-उपदेश-रसायन-रास)।
२-चरित प्रधान (यथा-पेथड रास)।
३-प्रवज्या या दीक्षामूलक (यथा-जंबू स्वामी, गौतम स्वामी और स्थूलिभद्र रास)।
४-उत्सव व वैभव-वीरता-मूलक (यथा-भरतेश्वर-बाहुबली-रास)।
५-छंद प्रधान रास (यथा-भरतेश्वर-बाहुबली-रास)।
६-कथा प्रधान-रामायण महाभारत पर (पंच पांडव चरित रासु)।
७-तीर्थों पर व तीर्थ यात्राओं पर-यथा रेवंतगिरि-रास तथा आबू-रास, सप्तक्षेत्रीय रास।
८-संघ वर्णन (यथा-समरा रास)।
९-संकीर्तन-जन्य तथा सैद्धान्तिक (यथा-सोलह-कारण-रास)।
१०-ऐतिहासिक-रास (यथा-समरा रास)।

इस प्रकार चरित्रों के गुणों का वर्णन करने, उनके दोषों को हटाने, यात्रा वर्णन करने, कथा निर्माण करने, मन्दिरों का जीर्णोद्धार करने, दीक्षा उत्सव हेतु जय घोष आदि के लिए ही इन रास ग्रन्थों की रचना की जाती थी। इसके अतिरिक्त वे भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा चरित मूलक होते थे। जैन रासा साहित्य जितना ही चरित मूलक होता था उतना ही ऐतिहासिक भी होता था।

इस प्रकार रास ग्रन्थों के विषय में व्यापकता आ गई और विषयों की सीमा का कोई बन्धन नहीं रहा। अतः इन जैन साधकों ने लोक साहित्यपरक अर्थात् जन भाषा में और शास्त्रीय भाषा दोनों में रास रचनाएं कीं।

**विषय की दृष्टि से—**

रास परम्परा में वैष्णव व जैन इन दोनों धर्मों ने बड़ा योग दिया है। वैष्णव धर्म में कृष्ण भक्ति शाखा के गोप मण्डल व कृष्ण गोपियों ने रास को चरम पर पहुँचाया और व्रज के रास तो शताब्दियों से प्रसिद्ध हैं। इनमें शृंगार-परक, भक्ति-परक और कोमल सभी प्रकार के रास मिलते हैं।

जैन धर्म ने भी विशाल संख्या मे संक्रांतिकाल के रासों को सुरक्षित रखा है। अनेक वीतरागी जैन मुनियों तथा राजपुत्रों के दीक्षा ग्रहण करने के अवसर पर भी रासों की क्रीड़ाएं होती थीं। स्त्री और पुरुष इन रासों को बड़ी श्रद्धा से खेलते थे और अपनी प्रकृति प्रदत्त अनुभूति को अभिनय व संगीत में डुबो कर साकार व सार्थक करते थे। मुनिवर सन्यास ग्रहण ही नहीं करते थे, उनका संयम-श्री के साथ विधिवत् विवाह होता था और इन जैन-रासों में से अनेक रासों का उद्देश्य आचार्य-श्री का संजमसिरि से वरण कराना होता था यथा—जिनेश्वर सूरि दीक्षा-विवाह-वर्णन रास। इस शुभ अवसर पर अथवा पर्व पर उनके अनुयायी श्रावक भला कब मानते ? वे उत्फुल्ल होकर नृत्य, लय, ताल, गीत आदि द्वारा आचार्य-श्री को श्रद्धांजलि देते थे अतः रास का आयोजन होना स्वाभाविक था।

**साहित्यिक रूप और शिल्प योजना**

साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन करने पर रास या रासक संगीत, नृत्य लय, ताल, छन्द, क्रीड़ा, अभिनय, उक्त सभी अंगों के समन्वय का समूह है। वस्तुतः रासक का सम्बन्ध उक्त अंगों से ऊपर दिखाया जा चुका है। रासक या रास का स्वरूप उद्धत-गेय-उपरूपक के रूप में उल्लास प्रधान होता है। अतः साहित्यिक दृष्टि से इसके शिल्प जन्य तत्वों का विवचन इस प्रकार किया जा सकता है:—

१—रासक गेय उपरूपक है, जिसकी कथा गद्य में कम व पद्य में अधिक अर्थात् अधिकांश पद्य में ही होती है।
२—उसमें अनेक नर्तकियाँ हों।
३—विभिन्न रागों का समावेश हो।
४—अनेक छन्द हो।
५—लय ताल का सुन्दर समन्वय हो।

६–अनेक प्रकार के अभिनय हों।
७–वह मण्डलों में विभक्त हो।
८–अनेक युगल हों, जो साथ क्रीड़ा करें।
९–पुरुष अलग, स्त्रियां अलग अथवा समवेत नृत्य।
१०–वस्तु में रस का समिश्रण अनिवार्य रूप से हो।
११–विभिन्न प्रकार के नृत्यों का समावेश हो।
१२–रास या रासक एक निश्चित स्थान या मंच पर हो।

निश्चित स्थान से तात्पर्य रंगमंच से लिया जा सकता है। यद्यपि रंग-मंच की सूचना कहीं भी स्पष्ट रूप से रास और रासक साहित्य का उल्लेख करने वाली प्राचीन संस्कृत व अपभ्रंश कृतियों में नहीं मिलती, परन्तु रास के शिल्प में स्थान–विशेष, नृत्य–विशेष, मुद्रा, हाव, भाव, तथा स्थिति–विशेष आदि तत्वों को देखकर यह कहा जा सकता हैं कि रंगमंच का स्पष्ट उल्लेख नहीं होने पर भी रास में मंच विशेष की स्थिति अवश्य थी।

**वर्तमान काल में रास की स्थिति—**

"रास" जैसे गेय उपरूपक आज भी अपनी जीवन्त विधाओं को लेकर विविध रूपों में हमारे सामने सुरक्षित हैं। हमारे देश की लोक संस्कृति अक्षुण्य है। रास जैसे सांस्कृतिक गेय-उप-रूपक की आयोजना देश के हर प्रदेश में विभिन्न शिल्पों में देखी जा सकती है। जहाँ तक राजस्थान का प्रश्न है राज-स्थान में रास खेलने की प्रथा अब भी है। मण्डलाकार बनाकर, विशेष अवसरों पर स्थल विशेष को सजाकर, उसी पर डंड़ों से वे ढोल वाद्य पर रास खेलते हैं। विभिन्न मण्डलियों में भी रास खेलने की प्रथा है। "रासधारी" एक मण्डल एतदर्थ प्रसिद्ध है। रास गाया भी जाता है परन्तु पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में इसका प्रचार अधिक है। स्त्रियों के समाज में रास की स्थिति विचित्र प्रकार की है। रास का यह वर्तमान रूप अत्यन्त प्रसिद्ध है। यों रास के शिल्प का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करने वाला यहाँ कोई नृत्य विशेष नहीं है, परन्तु उसके थोड़े-थोड़े तत्व विभिन्न प्रान्तों के नृत्य विशेषों में बँट गये हैं। राजस्थानी लोक-नृत्यों में जो मीणों और भीलों के नृत्य, बणजारों के नृत्य, नटों की कलाएं बागड़ियों और गरासियों के नृत्य, कालबेलियों के इन्डोणी, शंकरिया, और पणिहारी का भावात्मक, अभिनयात्मक और नृत्य-प्रधान संगीतात्मक-नृत्य, भंवई-नृत्य, रासधारियो की लीलाएं, तुर्राकिलंगी के अभिनय प्रधान नाच, बीकानेर के अग्नि नर्तक, जालौर के ढोल नर्तक, डीडवाणा और पोकरण की तेराताली (ताल रास) मारवाड़ की कच्छी घोड़ियों का नृत्य, गीत, अभिनय,

शारीरिक अवयवों की कला, नृत्य तथा वाद्यों से समन्वित मारवाड़ का कठपुतली नृत्य, पाबूजी की फड़ें, कान्ह गूजरी के नृत्य विशेष तथा कुचामणी ख्याल, अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। साथ ही रास के अभिनय को उसी आदिम स्थिति में पहुँचाने का प्रयास करने वाले और भी कई जंगली नृत्य हैं जिनमें डफ के नृत्य, सांसियों के नृत्य, कंजरों, नायकों, चमारों व मेहतरों के नाच प्रसिद्ध है। शेखावाटी प्रदेश के चौक चानणी और मंदिरों के कीर्तन और नृत्य भी अपना महत्व रखते है। आंशिक रूप से रास के तत्वों का प्रतिनिधित्व करने वाले नृत्यो में राजस्थान की स्त्रियो का 'घूमर' या झूमर नृत्य नहीं भुलाया जा सकता, घूमर नृत्य में स्त्रियां 'गवर' या पार्वती की प्रतिमा के सामने सैकड़ों की संख्या में चक्राकार मण्डलों में विभक्त हो, घन्टों नृत्य में डूब जाती है, जिनमें वाद्य की मधुरता, गीत का प्रवाह, स्वर व संगीत की रुझान अभिनय की उत्कृष्टता तथा भावोन्मेष दर्शनीय है। पर इसमें, युगलों में पुरुष भाग नहीं ले सकते। यह विशेषकर होली गणगौर और दीपावली जैसे त्यौहारों के अवसरों पर मध्यमवर्गीय स्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। घूमर का उदयपुरी स्वरूप संगीतमय है। जोधपुर का घूमर कलात्मक है, पर उसमें अङ्ग संचालन का अभाव है और कोटा बूंदी के घूमर में अपूर्व जीवट और प्रभाव होता है। इन नृत्यों में 'ताला रास' 'दण्ड-रासु' आदि सब रूप देखने को मिल जाते है। अतः घूमर राजस्थान का एक राष्ट्रीय नृत्य है।

गुजरात और मालवा में रास की वर्तमान स्थिति, वहां के 'गरबा' गरबो या गरबी नृत्य प्रस्तुत करते है। 'गरबा' एक ऐसे घड़े को कहते है जिसमें सैकड़ों छेद होते हैं। स्त्रियां उनमें दीपक जलाकर ताल, अभिनय, संगीत आदि के आधार पर उसको सम्पन्न करती हैं। यह नृत्य, रास का सही रूप आज भी प्रस्तुत करता है।

रास के वर्तमान स्वरूप की सुरक्षा करने वाले रासो में बृज के रासों का भी बड़ा महत्व है। मथुरा, वृन्दावन आदि स्थानों पर राधा कृष्ण और गोपियों के रूप में विविध लीलाओं तथा कृष्ण द्वारा किए रासों की आयोजना होती है। यहां तक कि अनेक मंडलियों ने तो इसे अपना पेशा ही बना लिया है। रास ब्रज की प्रमुख वस्तु है और कृष्ण उसके जन्मदाता! ब्रज में रास का वर्तमान रूप कब प्रचलित हुआ? उसके प्रारम्भकर्ता कौन थे? इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, साथ ही अनेक मतभेद भी है।[1]

---

१-(क) देखिये:-ब्रज भारती-वर्ष ४, अंक २, पृ० ६-११ पर प्रभुदयाल मीतल का नारायण भट्ट पर लेख ❀

नारायण भट्ट, वल्लभाचार्य, हरिदास तथा घमंडदेव का इनके प्रवर्तकों में उल्लेख मिलता है।

ब्रज के इन रासों के दो प्रमुख प्रकार हैं:—

१—शास्त्रीय बन्धन युक्त तथा

२—शास्त्रीय बन्धनमुक्त लोक नृत्य जिनको नन्दगांव और बरसाना की गुजरियां विविध मुद्राओं में नृत्य करती हुई, हल्लीसक का वास्तविक रूप प्रस्तुत करती हैं, जिसमें वाद्य नहीं होता। पर यह गायन बड़ा ही करुणाजनक होता है। यह नृत्य संभवतः समय के प्रभाव से समाप्त हो गया हो। डंडे लेकर मंडलाकार नृत्य अहीर आज भी करते देखे जाते हैं।

ब्रज का शास्त्रीय नृत्य दो प्रकार का है:—

१—रास और २—महा रास। 'रास' रासमंडलियां करती हैं तथा महारास कृष्ण ने दो गोपियों में एक कृष्ण या दो कृष्ण के बीच एक गोपी के रूप में किया था। जब ब्रज की मंडलियां रास करती हैं, तो भरत के नाट्य-शास्त्र में वर्णित तीनों रासकों का मिश्रण देखने को मिल जाता है।[1] आज जो ब्रज में रास पद्धति है, वह ३००–४०० वर्षों से अधिक पुरानी प्रतीत नहीं होती। इसमें मंगलाचरण के बाद सारंगी, पखावज, किन्नरी, झांझ और मजीरा के आधार पर संगीत गान होता है और सब नृत्य करते हैं।

अवधी भाषा में "रास" का स्वरूप "रसिया" के रूप में मिलता है। दिल्ली में हर वर्ष होने वाले सांस्कृतिक लोक-नृत्यों में "इप्टा" के अवधी के रसिया नृत्य का महत्व भी अत्यन्त अधिक है; जिसमें अभिनय, नृत्य, वाद्य, गान, वेश, परिवेश, मंच और अभिनय सब का सम्मिश्रण मिलता है। अवधी और ब्रज के स्वांग भी रास के एक अंग की पूर्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त ब्रज के लोक-

---

❀ (ख) श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी का-ब्रज लोक संस्कृति सं. २००५, पृ० १३९-४७ पर 'रास' लेख।

(ग) रामनारायण अग्रवाल का "रासलीला के अपभ्रंश कर्ता" लेख, ब्रज-भारती, वर्ष ५, अंक ५।

(घ) पोद्दार अभिनंदन ग्रन्थ, पृ० ७१३-१७ में मारविन हाइन का "रासलीला के विदेशी दर्शन" लेख।

१—देखिये—ब्रज का इतिहास; भाग २, श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी पृ० ११५ पर भाई चुन्नीलाल शेष का लेख

नृत्यों में रास के सम्तनाथी, ब्रज की चंरकला, ललमनियां, चांचर, भूला-नृत्य, नरसिंह नृत्य, ढांड़ा ढाड़ी नृत्य आदि लोक-कलात्मक नृत्य अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, जो रास परम्परा को भी सुरक्षित करते हैं। जयदेव का गीत गोविन्द और चैतन्य का कृष्ण भक्ति-प्रेमलीला वर्णन किसी रास से कम नहीं है।

बंगाल में भी भगवान कृष्ण के रास का रूप प्रचलित है, जिसमें उनका वेश ब्रज से भिन्न होता है, पर इसमें अभिनयात्मकता बड़ी उत्कृष्ट होती है।

आसाम मणिपुर के इलाके में वेश-भूषा, अभिनय और भावुकता तीनों तत्वों की रास में प्रधानता है। वहां भी वसन्त रास, नृत्त रास और महा रास ये तीन प्रकार के होते हैं। इसी प्रकार दक्षिण में तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम आदि प्रदेशों के लोक-साहित्य रास का प्रतिनिधित्व करते हैं। वस्तुतः रास की परम्परा आज भी विभिन्न लोक कलात्मक अनेक नृत्यों के रूप में सुरक्षित है। वस्तुतः तत्कालीन अपभ्रंशेतर कालीन जैन रासों का वर्तमान स्वरूप जैन समाज में आज भी प्रचलित है परन्तु उसका आंशिक रूप ही दृष्टिगोचर होता है। दीक्षा के समय जैन मुनि का संयम-श्री के विवाह के रूपक के रूप में सब क्रियाएं पूरी की जाती हैं पर रास नृत्य और उल्लास के साथ नृत्य-अभिनय अब रुक गया है। सिर्फ अपनी उल्लास प्रधान अभिव्यक्ति को वे संगीत प्रथा के माध्यम से प्रकट कर देते हैं। हाँ तीर्थो आदि में स्त्रियों का नृत्य उल्लेखनीय है। वस्तुतः रास नृत्य आदि के प्राचीन मानदण्ड आज बदलते जा रहे हैं, पर जैन मुनियों में रास बनाने और उनको गाकर उनका उपदेश देना आज भी प्रचलित है। सौराष्ट्र और गुजरात के जैन मुनि तो आज भी 'रास' बनाकर गाते हैं। ऐसा लग रहा है कि आधुनिक जैन-रास पुनः अपनी प्राचीन गेय व उपदेशात्मक स्थिति को, जो हेमचन्द्र से पूर्व थी, प्राप्त करते चले जारहे हैं। राजस्थानी भाषा में जो परवर्ती रास मिले हैं, उसमें 'रासा' शब्द का ही अर्थापकर्ष होगया है और वे युद्ध वर्णनात्मक काव्य के भी सूचक हैं। इसी कारण राजस्थानी में रासो शब्द का प्रयोग लड़ाई झगड़े या गड़बड़ घोटाले के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा। १७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तथा १८वीं शताब्दी में कुछ विनोदात्मक रचनाएं जैसे ऊन्दर रासो, मांकड़ रासो आदि रासों की रचना हुई है।[1] डॉ० हजारीप्रसादजी का कथन है कि 'रासक' वस्तुतः एक विशेष प्रकार का मनोरंजन है। रास में वही भाव है।[2] आज के रास, विषयों की

---

१–देखिये नागरी प्रचारिणी पत्रिका; सं० २०११, अंक ४, पृ० ४२० पर श्री अगरचन्द नाहटा का "प्राचीन भाषा काव्यों की विविध संज्ञाएं" लेख।

२–देखिये-हिन्दी साहित्य का आदिकाल, आचार्य हजारीप्रसाद त्रिवेदी, पृ. १००,

सीमा के बन्धन में नहीं हैं, जनता अपने सुख-दुख को प्रेम, धर्मोपदेश, शृंगार, कथा आदि सभी रूपों में प्रस्तुत कर, इस व्यस्त जीवन में सुख अनुभव करती है।

जो भी हो, उक्त विवेचन में रास की परम्परा, उद्देश्य, परिभाषा, शिल्प आदि के तत्वों का पूरा-पूरा मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयास लेखक ने किया है। अब अपभ्रंशेत्तर काल अथवा प्राचीन हिन्दी में जो आदिकाल की विभिन्न शताब्दियों में विशाल संख्या में रास रचनाएं प्राप्त होती हैं उनके काव्य का अध्ययन करना ठीक होगा। उक्त विवेचन में आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में प्रत्येक शताब्दी में मिलने वाले हिन्दी जैन रासो की मुख्य प्रवृत्तियाँ, शिल्पगत तत्वों तथा काव्य रूपों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आदिकालीन हिन्दी रासो को समझने में इससे पर्याप्त सहायता मिल सकेगी, ऐसा लेखक का अनुमान है।

---

# भरतेश्वर बाहुबली रास

रास परम्परा में सर्व प्रथम और सबसे विस्तृत पाठवाली रचना भरतेश्वेर बाहुबली रास है। आदि कालीन हिन्दी जैन साहित्य में यही कृति ऐसी है, जो पर्याप्त प्राचीन तथा जो अपभ्रंश की परवर्ती अवस्था और पुरानी हिन्दी (प्राचीन राजस्थानी और जूनी गुजराती) के बीच की कड़ी है। परिशीलन करने पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी जैन साहित्य की रास परम्परा का भरतेश्वर बाहुबली रास सर्व प्रथम रास है।[1] अद्यावधि मुनि जिनविजय जी तथा गुजराती विद्वान इसी रचना को सर्व प्रथम रचना मानते हैं। पर श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा शोध पत्रिका में एक प्राचीन रास श्री वज्रसेन सूरि रचित 'भरतेश्वर बाहुबली घोर' प्रकाशित किया गया है जो इनमें भी प्राचीनतम है, पर रचना अकेली तथा संक्षिप्त होने से वह रास जन्य प्रवृत्तियों की प्रमुखता का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। ऐसी स्थिति में भरतेश्वर बाहुबली रास को ही हिन्दी साहित्य का सर्व प्रथम रास माना जा सकता है।

प्रस्तुत कृति का सम्पादन मुनि जिनविजय जी ने किया। रचनाकार श्री शालिभद्रसूरि हैं और रचना काल सं० १२४१। प्रति बड़ोदरा के एक विद्वान् कान्तिविजय जी की है, तथा कागज की है। अनुमानतः ४०० या ५०० वर्ष पुरानी होगी। मुनिजी का यह पाठ पूर्ण प्रामाणिक प्रतीत होता है। इसी पाठ को राहुल सांकृत्यायन ने भी उद्धृत किया है।[2]

दूसरी कृति का सम्पादन श्री लालचन्द भगवान गांधी के द्वारा सम्पादित है।[3] श्री गांधी ने प्राच्य विद्या मन्दिर की तथा आगरा संग्रह की श्री विजय धर्म सूरि के आधार पर कृति सम्पादित की है। श्री गांधी का पाठ मुनिजी की सम्पादित कृति से स्थान स्थान पर थोड़ा भिन्न भी मिलता है। तथा छंद क्रम में भी अन्तर है, पर दोनों अपने अपने रूप में प्रामाणिक है।

---

१–भारतीय विद्या; भाग २, अंक १, सं० १९९७, पृ० १–१९ सं० मुनि जिनविजय।

२–हिन्दी काव्य धारा; श्री राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३९८-४०८।

३–भरतेश्वर बाहुबली रास; सं० श्री लालचन्द भगवान गांधी, प्रकाशक प्राच्य विद्या मंदिर बड़ोदरा, वि० सं० १९९७।

प्रस्तुत कृति का मूल्यांकन करने से पूर्व दो और महत्वपूर्ण बातों का स्पष्टीकरण आवश्यक है। एक तो यह कि यह कृति प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी की है तथा दूसरी बात देश्य-भाषा और जन-भाषा के आधार पर यह कृति पुरानी हिन्दी की है। गुजराती विद्वान् इसे पुरानी गुजराती की मानते हैं जब कि १५०० वि० के पूर्व गुजराती का स्वतन्त्र अस्तित्व कुछ नहीं था, तथा दोनों एक ही भाषाएं थीं और यह रास वि० सं० १२४१ का है अतः प्राचीन राजस्थानी और गुजराती की पृथकता का प्रश्न विवाद का विषय ही नहीं है।

भरतेश्वर बाहुबली रास के कर्त्ता विद्वान् जैनाचार्य शालिभद्र हैं, जो अपने समय के विख्यात कवि थे। भरतेश्वर और बाहुबली दोनों अत्यन्त प्रसिद्ध चरित नायक राजपुत्र रहे हैं। इन दोनों से सम्बन्धित अनेक वर्णन, चरित-कथा आदि बहुत ही पुराने ग्रन्थों में उपलब्ध हो जाते हैं। अतः यह परम्परा अब तक मिलती है।

**भरतेश्वर–बाहुबली पर रचित साहित्य**

इस साहित्य की परम्परा १८वीं शताब्दी तक मिलती है। तथा कथा रूढ़ि एक-सी है वर्णन तथा घटनाओं में परम्परा वैभिन्न्य भी मिलता है। कहीं भरत का वर्णन अकेले मिलता है और कहीं बाहुबली का। कुछ स्थल इस प्रकार हैः—

"जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति नामक जैन उपांग सूत्र में भरत क्षेत्र के साथ चक्रवर्ती भरत के ६ खण्डों की विजय का वर्णन है। भरत और बाहुबली का अधिकार वर्णन विमल सूरि कृत पउम चरित में ५वीं शताब्दी में श्री संघदास-गणि रचित वासुदेव हिंडी [1] नामक प्राकृत की कथा में ऋषभ के साथ दोनों का वर्णन है। ७वीं शताब्दी की जिनदास गणि की प्राकृत भाषा की चूर्णि नामक व्याख्या में दोनों का चरित वर्णन है। दोनों के परस्पर युद्धों के वर्णनों का जिन ग्रन्थों में उल्लेख है, वे हैं—रविषेणाचार्य का पद्मपुराण, धनेश्वरसूरि तथा १२वीं शताब्दी में जयसूरि कृत धर्मोपदेश माला के साथ-साथ जिनसेन के आदि पुराण [2] पुष्पदंत के त्रिसट्ठि महापुरुष, गुणालंकार तथा हेमचन्द्र के त्रिसट्ठि शलाका चरित (प्रथम पेठि) तथा सं० १२४१ के सोमप्रभाचार्य के कुमारपाल

---

१—देखिएः—आत्मानन्द जैन ग्रन्थ माला ग्र० सं० ८०, सं० मुनि चतुरविजय, सं० १९८६ भावनगर जैन आत्मानन्द सभा द्वारा प्रकाशित।

२—माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थ माला समिति द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ खण्ड १ पर्व ४. पृ० ६१–६२।

प्रतिबोध [1] और विनयचन्द सूरि कृत आदिनाथ चरित में मिलता है। परवर्ती साहित्य में १४वीं शताब्दी में जिनेन्द्र रचित पद्मनन्द महाकाव्य [2] सर्ग (१६-१७) सं० १४०१ में मेरुतुङ्ग रचित स्तंभनेन्द्र प्रबन्ध में, १४३६ के जयशेखर सूरि कृत उपदेश चिन्तामणि की टीका में तथा सं० १५३० में गुणरत्न सूरि के भरतेश्वर बाहुवली पवाड़ो में तथा सं० १७५५ के जिन हर्ष गणि के गुजराती "शत्रुंजय रास" में भरत बाहुवली का चरित्र वर्णित है।

वस्तुतः इन दोनों चरित नायकों के वृत्त बड़े ख्यात हैं और यह कथा परम्परा १८वीं शताब्दी तक मिलती हैं। इन बहिरंग प्रमाणों से इनकी कथा रूढ़ियों का सरलता से अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। उक्त प्रमाणों से भरतेश्वर बाहुवली की कथाएं संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी (राजस्थानी-गुजराती) आदि सभी भाषाओं में विस्तार से मिल जाता है। ग्रन्थों में ही नहीं, भारत के विभिन्न मन्दिरों, तीर्थों, स्तूपों, चित्रों तथा अनेक स्मारकों के लिए भी बाहुबली आकर्षण के विषय रहे हैं। उदाहरणार्थ मैसूर के श्रवण बेलगोल में ५६ फुट के लगभग अद्भुत शिल्पः कलामय बाहुवली की ध्यानरथ खड़ी हुई प्रतिमा है। तथा आबू की सं० १०८८ की विमलवसही की शिल्प कला में भरत और बाहुबली युद्ध के दृश्य शिल्प चित्रों में दिखाए गये हैं। [3]

भरतेश्वर बाहुवली रास वीर-रस-पूर्ण प्रवन्ध है। यों शान्ति और अहिंसा प्रेमी जैनाचार्यो का वीर और शृंगार रस से कोई सम्बन्ध नहीं मिलता परन्तु परम्परा के कारण उन्हें ऐसे काव्यों की रचना करनी पड़ी। रास में उत्साह, दर्प, स्वाभिमानपूर्ण उक्तियां यथा वीर रास का स्रोत उमड़ता है। इस रास की मौलिकता यह भी है कि यह प्रबन्ध युद्ध प्रधान व वीर रस पूर्ण होते हुए भी निर्वेदांत है। जैन रचनाकारों ने विरोधी रसों का समन्वय बड़े कौशल से किया है। यहां तक कि यह बहुत ही आश्चर्यजनक तथ्य है कि रास या फागु जैसी शृंगार प्रधान रचनाएं भी निर्वेदांत है।

प्रस्तुत रास में रचना स्थान कवि ने कही नहीं दिया है, पर एतदर्थ गुजरात या राजस्थान के किसी भी युद्धवीर या युद्ध प्रेमी नगर की कल्पना की जा सकती है। राजस्थान तो यों भी युद्ध वीरों का जन्मदाता और युद्ध प्रधान प्रदेश रहा है।

---

१-गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थ माला नं० १४ में प्रकाशित।

२-वही, नं० ५८ में प्रकाशित (गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थ माला)

३-भरतेश्वर बाहुवली रास; श्री गांधी, प्रस्तावना पृ० ५३-५६।

## कथा भाग

राम की कथा वस्तु संक्षेप में निम्नलिखित है

जम्बूद्वीप के अयोध्यानगर में ऋषभ जिनेश्वर के सुनन्दा और सुमंगला ने दो पुत्र क्रमशः बाहुबली और भरत यशस्वी और पराक्रमी उत्पन्न हुए। भरत अग्रज थे। ऋषभेश्वर भरत को अयोध्या का तथा बाहुबली को तक्षशिला का राज्य सौंपकर विरक्त होगए। उन्हें कैवल्य-ज्ञान प्राप्त हो गया। जिस दिन उन्हें कैवल्य-ज्ञान प्राप्त हुआ भरत की आयुध शाला में "दिव्य चक्ररत्न" उत्पन्न हुआ। भरत ने पहले पिता की वंदना करके दिग्विजय प्रारम्भ की। आगे-आगे चक्ररत्न; पीछे पीछे सेना। अनेक राजाओं को विजय करके जब वे पुनः लौटे, तो चक्र अयोध्यापुरी के बाहर रुक गया। भरत के मन्त्री ने इसका कारण उसके भाइयों को जीतना व वश में नहीं करना बताया। सब की दृष्टि बाहुबली की ओर उठ गई। भरत ने क्रुद्ध होकर बाहुबली को दूत के साथ अपनी अधीनता स्वीकार कर पैरों में प्रणाम करने को कहा। सौगात व उत्कोच मांगे। बाहुबली भी क्रुद्ध हो गये और कहा "ऋषभेश्वर ने जब सबको समान रूप से राज-पद दिया है, तब एक महासम्राट हो और दूसरा भाई उसके आधीन, यह सम्भव नहीं है। दूत को उसने फटकार कर वापस लौटा दिया। दोनों ओर से युद्ध की तैयारियां हुई।

१३ दिन के भयंकर युद्ध से रक्त की नदी बह गई। तब भरतेश्वर की सेना से चन्द्रचूड और रत्नचूड विद्याधरों ने विनय की। इन्द्र ने आकर युद्ध बन्द कराया और कहा कि भाई-भाई की पारस्परिक लड़ाई में सेना का संहार व्यर्थ हो रहा है। अतः अच्छा तो यह हो कि द्वन्द्व युद्ध हो कर विजय का निर्णय हो जाय। वचन युद्ध, दृष्टियुद्ध, ( नेत्र युद्ध ) और दण्ड युद्ध निश्चित हुए और तीनों में जब बाहुबली विजयी हुए तो भरत ने क्रुद्ध हो कर उन पर मर्यादा तोड़ कर चक्ररत्न चला दिया। यद्यपि इससे उनकी कुछ भी हानि नहीं हुई, पर वे चक्रवर्ती के इस व्यवहार से बहुत क्षुब्ध हुए और उन्हें विरक्ति हो गई। उन्होंने दीक्षा ग्रहण करली। युद्ध वीर को निर्वेद हो गया। राज्य-श्री उन्हें तुच्छ जान पड़ी। चक्रवर्ती भरत ने उनके चरणों में मस्तक टेक कर अमर्यादित कृत्य द्वारा सम्पन्न भूल को स्वीकार किया तथा क्षमा याचना की। पर बाहुबली को तो निर्वेद ने अपना लिया था। अनेक वर्षों तप करके वे कैवल्य ज्ञानी हो गये। भरत ने भी धूमधाम से नगर में प्रवेश किया। उत्सव हुए, नगर तोरण सजाये गये। आयुधशाला में आकर चक्ररत्न भी शांत हुआ और चतुर्दिक भरतेश्वर का यश छा गय

रास की कथा यही है। रचना अनेक बन्धों में लिखी गई है और कुल मिला कर २०५ छन्दों में समाप्त हुई है। प्रबंध परम्परा का यह एक महत्व पूर्ण खण्ड काव्य है। सं० १२४१ का यह रास अन्य उपलब्ध अनेक हिन्दी रासों में सब से बड़ा है। इसके बाद इतनी बड़ी रास रचनाएं १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही मिलती हैं। यह प्राप्त कृतियों से स्पष्ट होता है। अस्तु २५० वर्षों के 'सं० १२४१ से १५०० तक' के इतने बड़े काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों, तथा भाषा आदि का प्रतिनिधित्व यह अकेला रास करता है। प्रस्तुतः प्रबन्ध-खण्ड की रचना भास-सर्ग या पर्व आदि में विभाजित नहीं है। यों प्रबन्ध काव्य को परम्परा से ही कुछ भागों में विभक्त कर दिया जाता है। महाकाव्य सर्गबद्ध होते हैं [1]। प्राकृत में प्रबन्ध काव्यों के सर्गों का नाम 'आश्वास' [2] है। अपभ्रन्श काव्यों में संधि [3] का प्रयोग हुआ है। संधि के प्रारम्भ में ध्रुवक और उसके आगे कुछ कडवक तथा प्रत्येक कडवक के बाद घत्ता रखा जाता था। कहीं कहीं प्रक्रम [4] नाम भी मिलता है। हिन्दी-जैन-साहित्य के परवर्ती अन्य रासों में भी ये नाम विभिन्न प्रकार से मिलते है। उदाहरणार्थ कच्छूली रास में वस्तु या वस्त, [5] जम्बू स्वामी चरित में कडवक, [6] एवं ठवणी (स्थापनी) समरारास में भास, [7] तथा पेथड रास में लढण, [8] नाम दिए गये है। इसके अतिरिक्त सर्गों के नाम कांड [9] व पर्व [10] भी मिलते हैं।

---

१—साहित्य दर्पण : विश्वनाथ—"सर्ग बंधो महाकाव्यो तत्रैको नायकः सुरः" पृ० ३०२—३।

२—सर्गा : आश्वास संज्ञकाः—साहित्य दर्पण, पृ० ३०४—५।

३—साहित्य दर्पणकार ने इसे "कड़वक" कहा है। पर वास्तव में यह संधि है। यह संधि कड़वक समूहात्मक होती थी। "कवड़क समूहात्मक संधि"-देखिए ना० प्र० प० वर्ष ५६, अङ्क १, सं० २०११।

४—देखिए संदेश रासक : अब्दुल रहमान कृत, भूमिका भाग।

५—प्राचीन गुर्जर काव्य; सं० मुनि जिन विजय, पृ० ५६।

६—जम्बू-स्वामी-चरित; तथा प्रा० गु० का० सं०, पृ० ४१।

७—समरारासु; मुनि जिन विजय कृत-जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय, पृ. ११७

८—प्राचीन गुर्जर कवियो—मोहनलाल देसाई कृत तथा प्रा० गु० का० परिशिष्ट, भाग २४।

९—तुलसी कृत रामचरित मानस में—बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड आदि।

१०—देखिये:—महाभारत में शांति पर्व, युद्ध पर्व आदि नाम।

भरतेश्वर बाहुबली रास भी इसीतरह वस्तु, ठवणी, वाणि, [1] आदि में विभक्त होता चलता है। यद्यपि कथा में कहीं भी कविकृत सर्ग, यति या समाप्ति नहीं है, फिर भी कथा का विभाजन, भरतकी दिग्विजय, भरत व बाहुबली का युद्ध, बाहुबली का दीक्षा ग्रहण, आदि इन तीनों शीर्षकों में सरलता से किया जा सकता है।

प्रस्तुत रास के कर्त्ता श्री शलिभद्र ने रास का प्रारम्भ मंगलाचरण से ही किया है। कवि ने ऋषभ जिनेश्वर के चरणों में प्रणाम करके, सरस्वती का मन में स्मरण करके, गुरु पद वंदना के पश्चात ही काव्य का प्रारम्भ किया है।

रिसह जिणेसर पय पणमेवी,
सरसति सामणि मन समरेवी। नमवि निरंतर गुरू चरण

## नाटकीय संलाप

रास में कई स्थलों में कवि की नाटकीय संवाद--योजना स्पष्ट होती है। संवाद बड़े प्रभावशाली और सरस हैं। यथा—मतिसागर-भरतेश्वर-संवाद, दूत—बाहुबली संवाद आदि संवादों में एक नाटकीय योजना है। पर्याप्त गेयता दर्प तथा उत्साह है। कवि ने इनके द्वारा काव्य में अभिनय-भंगिमा का समावेश किया है। दोनों संलापों के उदाहरण देखिए:—

मतिसागर किणि काज चक्क न पुरि प्रवेसु करइ
तु जि अम्हारह राजि धुरि धरीय धोरि धुरह [2] —(प्रश्न)
बोलइ मंत्रि मयंकु, सम्भलि सामीय ! चक्कधर [3]

.... .... ....

नवि मानइ तूय आण बाहुबलि विह बाहुबले

.... .... ....

तिणि कारणि नर देव ! चक्क न आवइ निय नियरे —(उत्तर)

इसी प्रकार दूत बाहुबली का संलाप उल्लेखनीय है:—

दूत—दूत पभणइ दूत पभणइ बाहुबलि राउ
भरहेसर चक्क धर कहि न कवणि दूहवण कीजइ

वेगि सुवेगि बोलिह संभलि बाहुवलि । [1] —(प्रश्न)
विण बंधव सवि संपइ ऊणी, जिम विण लवण रसोइ अलूणी ।
तुम बंसणि उत्कंठित राउ, नितुनितु वाट जोह भाउ [2]

और दूत के यह कहने पर कि चलो भरतेश्वर की अधीनता स्वीकार करो, नहीं तो वह तुम्हारा वध करेगा—बाहुवली तत्काल उत्तर देते हैं—

राउ जपंइ राउ जपंइ सुणिन सुणि दूत —(उत्तर)
जंविहि लिहीउ भालयलि तंजि लोह इहलोइ पामइ
.... .... ....
अरि रि ! देव न दानव महि मंडलि मंडलवै मानव
काइ नं लंघइ लहीयालीह, लाभइ अधिक न ओछा दीह [3]

विविध वर्णनों में नगर-वर्णन, सेना-वर्णन, दिग्विजय-वर्णन, शकुन-वर्णन हाथी, घोडों, सवारों आदि के वर्णन मिलते हैं। इनके कई वर्णन ऊहात्मक और अतिशयोक्ति प्रधान है। शेष वर्णन साधारण हैं परन्तु उनकी भाषा में पर्याप्त सरलता है। वीर रस प्रधान वर्णनों में "णत्व" और "टकार" प्रधान भाषा चलती है। इन वर्णनों में एक जीवट, ओज और जीवन्तपन है। शब्दों में प्रवाह, सरसता, और उत्साहभरा है। शब्द चयन अनुप्रासात्मक है। कुछ वर्णन देखिए:—

हाथियों का वर्णन—

(क) चलिय गयवर चलिय गयवर गहिर गजजंत
(ख) गजउं फिरि फिरि गिरि सिहरि, भंजइ तरुवर डालि तु
अंकुश वस आवइ नहींय, करइ अपाट जि आलि तु

घोड़ों व सवारों का वर्णन—

(क) हूंफइं हसमस हण हणइं तरवरंत हयथट्ट चल्लिय
(ख) फिरइ फेकारइ फोरणइं ए, फुड फेणाउलि फार तु
तरणि-तुरंगम सम तुलइं, तेजिय ताल तसार तु
(ग) हींसइं हसमिसि हण हणइं ए, तरवर तारतोखार तु
खूंदइं खुरलइं खेडवीय, नइं मानइ असवार तु [4]

सेना वर्णन—कटक न कवणि हि भरह तणउं भाजइ भेडि भिडन्त तु
रेलइं रयणायरह जिमि राणो राणि न उंत तु

---

१—वही, पद ७८।
२—वही, पद ८३, पृ० २८।
३—वही, पृ० ८, वस्तु १६।
४—भरतेश्वर बाहुवली रास; श्री गांधी, पृ० १०।

"शकुन" वर्णन भी लोक साहित्य की परम्परा को विकसित करता है। दूत का वाहुवली के पास जाना और रास्ते में लोमड़ी, सियार, सर्प, आदि का मिलन–वर्णन वड़ा ही प्रभावशाली है, शब्दों की अनुप्रासात्मकत उल्लेखनीय है:–

क. जा रथ जोत्रीय जाय, सुजि आए सिह नरवरह
फिर फिरि साम्हउ थाइ वाम तुरीय वाहिणी तणउ (पद ५६)

ख. काजल–काल विडाल, आविय आडिइं उतरह ए
जिमणउ जम विकराल, खर खर खर–रव उछलीय– (५७)

ग. सूकीय वाउल डालि, देवि वयठो सुरकरइ ए
झंपीय झालम झाल, धूक पुकारहिं दाहिणि ए– (५८)

घ. जिमणइ गमइ विपादि, फिरिय-फिरिय शिव फेकरइ ए
डावीं य उकलइ सादि भैरव-भैरव रव करइ ए–

इसी तरह विल्ली, गधा, वांये घोड़े का अड़ना, सूखी डाली पर देवि [पक्षी विशेष] का वोलना, दाहिने घूक [उल्लू का वोलना] और लोमड़ी [शिव] का वार वार सामने फिर-फिर कर अपशकुन करना आदि चित्रण यथार्थ है।

### अनूठी उक्तियाँ

वीर रस की दर्प और उत्साह प्रधान उक्तियां अत्यन्त सुन्दर हैं, जिसमें जीवन के लिए पर्याप्त जीवट का समावेश है। स्वावलम्वन और स्वाभिमान पूर्ण कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं:–

क. परह आस किणि कारण कीजइ, साहस सइंवर सिद्धि वरीजइ
हीउं अनइ हाथ हत्थीयार, ऐह जि वीर तणउ वरिवार [1]

[दूसरे की आशा क्यों की जाय ? साहस से स्वयं ही सिद्धि को वरण करना चाहिए। पास में दृढ़ हृदय और हाथ में हथियार ही तो वीरों का परिवार होता है] कितनी दर्प, स्वावलम्वन और पुरुषार्थ पूर्ण उक्ति है !

ख. सिर सरवस स पतंग न गमीजइ, तोइ नीसत पणइ न नमीजह [2]

ग. कोइ न लोपइ लिहिया लीह।

घ. सामीय विसमउ करम–त्रिपाउ [3]

ङ. धिक् धिक् ए एय संसार।

---

प्रस्तुत रास में गेयता है। वस्तु प्रवाह के साथ गेयता का मिश्रण रास का सौन्दर्य और बढ़ा देता है। भरतेश्वर बाहुबली रास विविध रागो में बंधा है अतः यह अनेक प्रकार से गाया जा सकता है। अधिक विस्तार से होने से समयाधिकता सम्भव है, परन्तु इसके प्रवाह को देख कर किसी भी वीर के भुजदण्ड फड़क उठेगे।

भरतेश्वर बाहुबली रास भाषा, रस-व्यंजना, अलंकार-योजना और छंद-योजना आदि की दृष्टि से भी पर्याप्त महत्व की कृति है।

भाषा विचार :—भरतेश्वर बाहुबली रास की भाषा 'देसिल-बयना सब-जन-मिट्ठा' उक्ति की सार्थकता सिद्ध करती है। भाषा का शब्द चयन ध्वन्यात्मक और अनुप्रासात्मक है। अतः काव्य की नादात्मकता स्पष्ट है। शब्द जैसे एक ही सांचे में ढले है। पुरानी गुजराती और पुरानी राजस्थानी दोनो ही विभाषाएं इसे अपना काव्य कहती है। परन्तु अधिकांश शब्द राजस्थानी के ही है। साथ ही अपभ्रंश के परवर्ती रूपों का भी प्रभाव है। भाषा का कुछ परिचय इस प्रकार है :–

उत्तर अपभ्रंश :—रिसय, जिणेसर, नयर, भरह, पयंड, चक्क, रयण, गयवर, आदि। क्रियाएं:–विज्जीय, मिल्लीय, चल्लीय, उल्लीय के साथ धूजीय, चालीय, आवीय, चलिय आदि रूप सरल राजस्थानी के हैं।

राजस्थानी व जूनी गुजराती :—काल, परवेस, धोरी, कुमर, आणंद धूजीय, गाजंत, गणह, भणह, दडवडंत, भडवडह, धडधडंत, आगलि, निहाण, गयण, भाण, देलहि, भिडंते, सिउं, तणों, गमी, डामी, जिमणइ, बिलाउ, मुजंआण, लेसुं, पठवियइ आदि संज्ञा एवं क्रियाओं के रूप।

पुराने शब्द :—पणमेयी, समरेवि, नमिवि, नरिंदह, बंधवहं, भणिषु, रासह, छंदिहि, रयणिहि, रासय, रासु, नितु, कीड, भंडारु, नरु आदि शब्द हेमचन्द्र के अपभ्रंश रूपो में शुद्ध प्रत्यय वाले शब्द है, पर साथ ही भाषा मे नये शब्दो का भी समावेश अपभ्रंश के संस्कार से हुआ है।

नये शब्द :—पय, वार, वरिस, हिव भाखिहि, सांभलउ, गच्छ सिणगार, पाटधर, तीणि तणउ, फागुण, छंदिहि आदि में नूतनता का आग्रह स्पष्ट है।[1]

तत्सम शब्द :—प्रस्तुत कृति मे पुराने रूप धीरे धीरे कम होते गये है

---

१–देखिये–भरतेश्वर-बाहुबली-रास–श्री गाँधी।

और उनके स्थान में प्रयुक्त तत्सम शब्दों की आयोजना [1] दृष्टव्य है यथा-चरित्र, मुनि, निरंतर, गुरु-चरण, अमर पुरी, गुण-गण-भंडार आदि ।

प्रस्तुत रास की भाषा परिवर्तन के इन नियमों का तथा ध्वनियों आदि के परिवर्तन पर स्वतन्त्र रूप से भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण की अपेक्षा है। उक्त उदाहरणों द्वारा यह तो जाना ही जा सकता है कि भाषा सरल पुरानी हिन्दी है तथा प्राचीन राजस्थानी शब्दों की भरमार है। साथ ही अपभ्रंश अपना स्थान रिक्त करती हुई एवं तत्सम शब्द ग्रहण करती प्रतीत होती है। ११वीं शताब्दी की कृति सत्यपुरीय महावीर उत्साह की तुलना में इस रचना की भाषा में पर्याप्त सरलता प्रतीत होती है। भाषा की सरलता के कुछ उदाहरण देखिए:—

क. हा कुल मंडण हा कुल वीर, हा समरंगणि साहस धीर (१५४)
ख. सामीय ! विसमउ करम विपाउ (१५७)
ग. कहि कुण ऊपरि कीजइ रोसु । एहु जि दीजइ देवह दोसु (१५६)

**रस-व्यंजना**

भरतेश्वर वाहुवली रास में प्रधान रस वीर है परन्तु एक आश्चर्य यह है कि कवि ने वीरता की क्रोड़ में शांत रस का समाहार किया है। या यों कहें कि वीरता का उपशमन शम ने किया है। रास के निर्वेदपूर्ण अन्त ने संसार, राज्य, शरीर और श्री की नश्वरता पर प्रकाश डाला है। रास में भरत, वाहुवली आश्रय-आलंवन, युद्ध की तैयारियां एवं उत्तेजक वचन उद्दीपन तथा परस्पर दोनों पक्षों में उदित उत्साह स्थायी भाव हैं। सेना वर्णन, रण वर्णन, युद्ध तथा योद्धाओं के शारीरिक स्वरुप अनुभावों और संचारियों के प्रतीक हैं। वीर रस, वीभत्स रस तथा शांत रस के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं:-

वीर रसः—क. हुँफइ, हसमस हण हणइ, तरवरंत हय घट्ट चल्लीय
पायक पयभरि टल टलीय, मेरु सीस सेस मणि मउड डुल्लीय
ख. तउ कोपिउ कलकलिउ काल केवीय कालानल
कंकोढ़ी किमरोपीओ करिकाल महावल
ग. जुडइ भिडइं भडहडई खेदि खडखडह खडा खडि

---

1-A definite tendency to replace Apbhramsa form of words by its sanskrit equivalent comes in to existence-Gujrati and its literature by Sri K. M. Munshi-page 86.

घ. कंपिय किन्नर कोडि पडीय हरगण हडहडिया
मारइं मुरडीय मूंछ मांहि नभ मच्छर भरिया [१]

और भयंकर युद्ध हुआ, रक्त की नदी वह गई तथा वीभत्स का परिपाक हमारे सामने हो जाता है।

वीभत्स रसः—क. उड्डीय खेड़ न सूझइ सूरनवि जाणीय सवार असूरवडइं
सुहड धड़ धावइं धसी, सणइ हणो हणि हांकइं इसी
ख. वहइ रुहिर नइ सिखर तरइ, टी टी टी रणि राषसु
करइं। [२]

(रुधिर की नदी में तैरने वाले सिरों को देखकर राक्षसों की भयानक आवाजें कर प्रसन्न होना वीभत्स प्रस्तुत करता है)

शान्त रसः—युद्ध के पश्चात् जव दोनों भाइयों में परस्पर "नेत्र युद्ध, जल युद्ध और मल्ल युद्ध होता है, तो भरत हार जाते हैं और क्रुद्ध हो वाहुवली पर चक्ररत्न से प्रहार कर बैठते हैं। इस राज्य व दिग्विजय के लिए अमर्यादित कार्य को देखकर बाहुबली को निर्वेद हो जाता है और रास के वीर रस प्रधान सारे आलम्बन शान्ति में बदल जाते है। इस एकदम हुए परिवर्तन को विद्वान कवि ने बड़े संभार से संजोया है जिसमें कहीं भी रस दोष नहीं हो पाता। उदाहरण द्रष्टव्य हैः—

धिक्‌धिक् ए एय संसार, धिक्–धिक् राणिम राज रिद्धि
एवडु ए जीव संहार, की धड़ कुण विरोध वसि [३]

अपनी पराजय, जीव-हानि आदि बातों ने भाई का अपने ही सहोदर पर धर्म युद्ध के स्थान पर चक्र का प्रहार एकदम अधर्म युद्ध था। इसी अमर्यादित कृत्य ने ही वाहुवली के हृदय में शम की सृष्टि करदी। वे दीक्षा ले लेते हैं। भरतेश्वर की आंखें आंसुओं से भर जाती है और वह उनके कदमों पर लेट जाता है—

सिरि वरि ए लोंच करेउ, कासगि रहीउ वाहुवले
अंसूइ आंखि भरेउ, तस पणमए भरह भडो। [४]

उक्त उद्धरणों की भाषा सरल, पदावली सरस व छन्द गेयता प्रधान

१–भरतेश्वर वाहुवली रास; श्री गांधी पृ० ३८।
२–भरतेश्वर बाहुवली रास : श्री गांधी पृ० १८१।
३–वही, पृ० ८२, ठवणि १४, पद १९३।
४–वही, पृ० ८२, पद १९५।

है । अतः ओज और माधुर्य का समन्वय हो जाता है। अपभ्रंश की टकार एवं णित्व प्रधानता ने वस्तु स्थिति को और भी सरस बना दिया है।

## अलंकार

भरतेश्वर बाहुबली रास की अलंकार योजना बहुमुखी है। यों पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर ही "सं० १२४१ नु प्राचीन गुजराती अनुप्रास यमक मय वीर रस प्रधान युद्ध काव्य" [१] जैसा महत्वपूर्ण वाक्य सम्पादक श्री गांधी ने लिख दिया है। अतः अनुप्रास बाहुल्य तो है ही।

सादृश्य मूलक अलंकार में यमक, श्लेष, रूपक आदि को योजना सुन्दर है। अनुप्रास तो रास की प्रत्येक पंक्ति में निखर उठा है। इसके अतिरिक्त दृष्टांत उदाहरण, अतिशयोक्ति, अत्युक्ति आदि बड़े स्वाभाविक बन पड़े हैं। अलंकरण में कवि का आग्रह नहीं, वे तो स्वतः ही आ गये हैं।

अनुप्रास-१. छेकानुप्रास क. गय गयंत गयवर गुडीय, जंगम जिमि गिरि श्रृंग तु

ख. हीसइ हममिसि हणहणइ

ग. तरवरतार तोखार तु।

२. वृत्य — क. चलीय गयवर चलीय गयवर गुहिर गज्जंत

३. लाटा एवं
४. वीप्सा — ख. पढम जिणवर पढम जिणवर पाय पणमेवि

५. अंत्यानुप्रास— क. दिसिदिसि दारक संचरइ ए

ख. अंगो अंगिम अंगमडए।

६. श्रुत्यानुप्रास—क. मंडीय मणि मय दण्ड, मेघाडंबर सिरि धरिय

ख. वेगि सुवेगि सु बोलहि संभलि बाहुबलि।

यमकः—अभंगः—क. वेगि सुवेगि सु बोलइ ख. खर खर खर रव उछलीय

सभंगः—क. झंपिय झालम झालि ख. भैरव भैरव रव करइ ए

श्लेषः—क. वाम तुरीय वाहिणी तणउ

ख. फिरिय फिरिय शिव फेकरइउ।

सांगरूपकः— क. काजल काल विडाल।

ख. बोल्लइ मंत्रि मयंकु।

उपमा एवं उत्प्रेक्षाः— क. जिमि उदयाचल सूरि तिमि सिरि सोहहि मणि मवडो

ख. झल कह कुण्डल कानि रवि ससि मंडीय किरि अवट

ग. चउकीड माणिक थंभ मांहि बइठउ बाहुबले।

रुपिय जिसी य रंभ चमर ढ़ारि चालइ चमर।

अतिश्योक्ति —(क) कंपिय पय भरि शेष रहिउ विरण साहि उन जाइ तु
एवं अत्युक्ति सिर डोलावइ धरणि हिं ए टल टलीय टूंक गिरि श्रंग तु।

दृष्टान्त तथा–(क) मंडिय मणिमय दंड मेघाडंबर सिरि धरिय
उदाहरण जस पयंड भुय दंड जयवन्ती जय सिरि वसइए
(ख) विण बंधव सवि संपइ उणी जिमि विण लवण रसोइ अलूणी

इसी प्रकार व्यतिरेक, अपन्हुति, विभावना आदि के उदाहरण भी मिल जाते हैं—

## छंद–योजना

आलोच्य रास की छंद-योजना बड़ी विस्तृत है, पर प्रमुख छंद 'रास' है। 'रास' नया छंद नहीं है। संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश की छंद-योजना पुरानी हिन्दी में पूर्णतया सुरक्षित है। विशेष तौर से हिन्दी ने तो अपभ्रंश के कई छन्दों को अपनाया है। अपनाया ही नहीं, उन्हें दुलार कर अपनी सम्पत्ति ही बना लिया है। रास छंद में अब्दुल रहमान ने पूरा संदेश-रासक लिखा। श्री शालिभद्र सूरि ने प्रारम्भ में ही अपना छंद-गत-मन्तव्य स्पष्ट कर दिया है।

प्रारम्भ—कुंहिव पभणिसु रासह छंदिहिं
ते जण मण हर मन आणंदहिं- भाविहिं भवीयण सांभलओ
और साथ ही रचना की समाप्ति पर भी:—

अन्त— गुण गणह ए तणउ भंडारु सालिभद्र सूरि जाणीइ ए
कीधउं ए तीणि चरित्रु भरह नरेसर रासु छंदिहिं

अतः कवि का मन्तव्य तो रास छंद के लिये स्पष्ट है, पर विद्वान् इस मत से सहमत नहीं। प्रारम्भ के अवतरणों में १६+१६+१३ और १६+१६+१३ मात्राओं की द्विपदी मिलती है। इस प्रकार का मिश्र बन्ध पूर्व कहीं भी देखने में नहीं आया। नीचे की कड़ियां सोरठा की हैं तथा 'तु' और 'ए' वर्णों के प्रयोग से ही रास छंद की पहिचान की जा सकती है।[१] डॉ० ह० व० भायाणी रास में अनेक छंद मानते हैं, जिनका उल्लेख रास परम्परा विवेचन में पहिले किया जा चुका है। श्री अगरचन्द नाहटा 'रास' छंद को अनेक छंदों का मिश्रण स्वरूप नहीं मान कर एक स्वतन्त्र छंद मानते हैं। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी

१–आपणा कवियो; श्री के० का० शास्त्री, पृ० १६०।

रासक को २१ मात्राओं का छंद मानते हैं। प्रमाण में वे सन्देश रासक का यह छन्द उधृत करते हैं—

'तूं जि पहिय पिक्खेविणु पिन्च उक्कं खिरिय
मंथर गय सरला इवि उत्तावली चलिय
तुहमणहर चल्लंतिय चंचल रमणि भरि
छुडवि खिसिय रसणावलि किंकिण रव पसिरि—[1]

पर सन्देश रासक के इस छंद को प्रस्तुत रास छंद से मिलाने पर अन्तर दिखाई पड़ता है—

ऊपन्नूं ए केवल नाण तउ विहरइ रिसहेस सिउ ए
आविउए भरह नरिदं सिउं परगहि अवझापुरिए

दोनों की मात्राओं में पर्याप्त अन्तर है। अतः स्पष्ट है कि इस रास छंद का शिल्प सन्देश-रासक के छंद से एकदम भिन्न है और सम्भवतः इसी भिन्नता के कारण श्री के० का० शास्त्री ने "इस प्रकार का मिश्र बन्ध पूर्व देखने में नहीं आया" लिख दिया है।

डॉ० द्विवेदी लिखते हैं कि—'विरहांक ने अपने वृत्त जाति समुच्चय में दो प्रकार के रास काव्यों का उल्लेख किया है। एक में विस्तारित या द्विपदी और विदारी वृत्त होते थे और दूसरी में अड्डिल्ल, घत्ता, टड्डु और ढोला छंद हुआ करते थे।[2] अतः बहुत सम्भव है कि प्रस्तुत रास छंद इन्हीं दो प्रकारों में से एक हो, क्योंकि द्विपदी इसमें भी मिलती है।

वस्तुः इस रास छंद की शिल्प-जन्य-स्थिति बहुत स्पष्ट नहीं प्रतीत होती सम्भावित स्थिति के आधार पर कवि की ही उक्ति को मूलाधार माना जा सकता है और तब इस छंद को 'रास' कहने में कोई आपत्ति नहीं लगती।

आलोच्य रास के छंदों का परिचय इस प्रकार है:—

सोरठा—मतिसागर ! किणि काज चक्क न पुरि प्रवेसु करइ
तुं जि अम्हारह राजि धुरि धरीह धोरि धुरइं

चउपइ—चौपाई अड्डिल्ल का ही दूसरा रूप है—

चंद्रचूड विज्जाहर राउ, तिणि वातइ मनि वहइ विसाउ
हा कुल मंडल ! हा कुलवीर ! हा समरंगणि साहस धीर [3]

---

१—हिन्दी साहित्य का आदिकाल; श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १०० ।
२—भरतेश्वर-बाहुबली-रास; श्री गांधी, पृ० ६६ ।
३—वही, पृ० ३८, पद ६३ ।

**वस्तु**——एक प्रसिद्ध छंद वस्तु का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है।

५ चरणों के इस छंद में नीचे के दो चरणों की मात्राएं तो दोहे की ही भांति २४ होती हैं। नीचे के दो चरण, लगता है कि, दोहे की ही भांति हैं:-

राउ जंपइ राउ जंपइ सुणि न सुणि दूत
भरह खंड भूमि सरह भरह राउ अम्हं सहोदर
मंत्रि महाधर मंडलिय, अंतेउर परिवार
सामंतह सीमाउ सह कहिन सुकुशल विचार

अन्तिम दो चरण बिल्कुल दोहा के ही हैं। इसके प्रथम चरण में (ऽ।) और १५ मात्राएं, द्वितीय चरण तथा तृतीय चरणों में १३+१५=२८ मात्राएं होती हैं। मात्राओं की कुल संख्या ११६ हैं। प्रथम चरण की सात मात्राओं की प्रायः आवृत्ति कर दी जाती है। उस अवस्था में प्रथम चरण में २२ मात्राएं हो जाती हैं।[1] वस्तु छंद पर विचार करते हुए एक दूसरे विद्वान् ने इसका संस्कृत नाम वस्तुक या वस्तु तथा अपभ्रंश नाम वत्थुअ या वत्थु किया है। इसका दूसरा नाम रड्डा भी है। छंद शास्त्र में इसके अनेक भेद किए गये हैं। प्राचीन राजस्थानी साहित्य में विशेषतः जैन साहित्य में इसका खूब प्रयोग हुआ है।[2]

इन छंदों के अतिरिक्त गौण रूप में निम्नांकित छंदों का प्रयोग भी हुआ है:—

**त्रोटक या त्रूटक**——इस छंद के चरण भी ६ ही होते हैं——

'वर वरइं सयंवर वीर, आरेणि साहस धीर
मंडलीय मिलिया जान, हय हींस मंगल गान

हय हींस मंगल गानि गाजिय, गयण गिरि गुह गुमइं
धम धमीय धरयल ससीय न सकइ, सेस कुल गिरि कम कमइं
धस् धसीय धायइं धार धावलि, धीर वीर विहंडए
सामंत समहरि समु न लहइं, मंडलीक न मंडए[3] (१४५)

प्रस्तुत रास में यह छंद कई बार आया है।

**सरस्वती धवलः**——इस छन्द को धवल भी कहते हैं। इसमें चार चरण होते हैं—

'राहीउ राउत जाइ पातालि, विज्जाहर विज्जा बलिहिं

---

१—देखिये—राजस्थान भारती; भाग ४, अङ्क १, परिशिष्ट २, पृ० ५५।
२—भरतेश्वर-बाहुबली-रास; श्री गांधी, पृ० ३८, पद ६३।
३—भारतीय विद्या; सम्पादक श्री मुनि जिनविजय; वर्ष २, अङ्क १, पृ० १४, पद १४५।

चक्क पहूचरा पूठि तिणि तालि, वोलए वलवीय सहस जरवो
रे रे रहि रहि कुपीउ राउ, जित्थु जाइसि तित्थु मारिवु ए
तिहुयण कोइन अचइ अपाय, जय जोषिम जीणइ जीवहए [१]

ठवणि—प्रस्तुत रास में ठवणि प्रयोग कई जगह आया है। जो संस्कृत स्थापनी शब्द का अपभ्रंश है। यह कोई छन्द विशेष नहीं है। मात्र नये छन्द की स्थापना करने या छन्द वदलने के लिये प्रयुक्त हुआ है।

निष्कर्षतः भरतेश्वर-वाहुवली-रास में इतने ही छन्द प्रयुक्त हुए हैं। आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की रास परम्परा अन्य सब काव्य रूपों या काव्य परम्पराओं से भिन्न है। १३वीं, १४वीं और १५ वीं शताब्दी के अनेक प्रकाशित, अप्रकाशित तथा अप्रसिद्ध रासों का अध्ययन आगे के पृष्ठों में प्रस्तुत किया जायगा। अनेक जैन भण्डारों में अधावधि उपलब्ध सैकड़ों जैन रासों में सबसे प्राचीन यही भरतेश्वर-वाहुवली-रास है। इस सम्वन्ध में लेखक का एक शोध-निवन्ध प्रकाशित भी हो चुका है। [२] रास का सरल और सुम्पादित पाठ यहां दिया जा रहा है जिससे उसके काव्य-सौष्ठव का अध्ययन किया जा सकता है।

---

१—भरतेश्वर-वाहुवली-रास; श्री गांधी, पद १५०।

२—हिन्दी अनुशीलन; वर्ष अङ्क, लेखक का भरतेश्वर-वाहुवली-रास एक अध्ययन, शीर्षक लेख।

तिरिण दिरिण आउधसालंह चक्को, आवीय अरोपरण पड़ीय धसहो
भरह विमासइ गहगहीउ ॥ १३ ॥

धनु-धनु हुं घर मंडलि राउ, आज पढम जिरणवर मुझ ताउ
केवल लच्छि अलंकीयउ ॥ १४ ॥

पहिलुं ताय पाय परणमेसो, राज रिद्धि राणिमा फल लेसो
चक्करयरण तव अणसरउं ॥ १५ ॥

❀

वस्तु—चलीय गयवर चलीय गयवर, गडीय गज्जंत
हूं पत्तउ रोसभरि, हिरण-हिरणंत हय थट्ट हल्लीय
रह भय भरि टल टलीय मेरू, सेसुमरिण मउड खिल्लीय
सिउं मरूदेविहिं संचरीय, कुंजरी चडिउ नरिंद।
समोसरणि सुखरि सहिय, वंदिय पढ़म जिणंद॥
पढ़म जिरणवर पढ़म जिरणवर, पाय परणमेवि.
आणंदिहिं उच्छव करीय, चक्करयरण वलि वलिय पुज्जइ
गडयडंत गजकेसरीय, गरूय नहि गजमेह गज्जइ
अहिरीय अम्बर तूर रवि, वलिउ नीसारणे घाउ
रोमंचिय रिउ रायवरि, सिरि भरहेसर राउ ॥ १७ ॥

ठंवणि १

अहि उगमि पूरवदिसिहिं, पहिलउं चालीय चक्क तु
धूजीय धरयल धरहर ए, चलीय कुलाचल चक्क तु ॥ १८ ॥

पूठि पीयाणुं तउ दियए, भयवलि भरह नरिंद तु
पिडि पंचायख परदलहं, इलियलि अवर सुरिंद तु ॥ १९ ॥

कज्जीय सयहरि संचरीय, सेनापति सामंत तु
मिलीय महाधर मंडलीय, गाढिम गुण गज्जंत तु ॥ २० ॥

गडयडतु गयवर गुडीय, जंगम जिम गिरिशृंग तु
सुंड दंड चिर चालवइं, वेलइं अंगिहिं अङ्ग तु ॥ २१ ॥

गंजइं फिरि फिरि गिरि सिहरि, भंजइं तरूवर डालि तु
अंकस वसि आवइं नहीं य, करइं अपार अरणालि तु ॥ २२ ॥

हीसइं हसमिसि हणहणइं ए, तरवर तार तोखार तु
खूंदइं खुरलइं खेडवीय, मन मानइं असुवार तु ॥ २३ ॥

# भरतेश्वर-बाहुबली रास
( शालिभद्र सूरि, सं० १२४१ )

रिसह जिणेसर पय पणमेवी, सरसति सामिणी मनि समरेवि
नमवि निरन्तर गुरु-चरण ॥ १ ॥

भरह नरिंदह तणु चरित्तो, जं जुगी वसहां—वलय वदीतो
वार वरिप बिहुं बंधवहं ॥ २ ॥

हुं हिव पभणिसु रासह छंदिहिं, तं जन मनहर मन आणंदिहिं
भाविहिं भवीयण संभलेउ ॥ ३ ॥

जंबुदीवि उवझाउरि नयरो, धणि कणि कंचणि रयणिहिं पवरो
अवर पवर किरि अमर परो ॥ ४ ॥

करइ राज तहिं रिसह जिणेसर, पावतिमिर मय-हरण दिणेसर
तेजि तरणि कर तहिं तपइये ॥ ५ ॥

नाभि सुनंद सुमंगल देवि, राय रिसहेसर राणी बेवि
रूवरेहिं रति प्रीति जिन ॥ ६ ॥

विवि बेटी जनमी सुनंदन, तेह जि तिहूयण मन आनन्दन
भरह सुमंगल देवि तणु ॥ ७ ॥

देवि सुनंदन नंदन वाहूवलि, भंजइ भिउड महाभड भूयवलि
अवर कुमर वर वीर धर ॥ ८ ॥

पूवर लाख तेणि तेयासी, राजतणीं परि पुहवि पयासी
जुग जुग मारग दाखोउ ए ॥ ९ ॥

उवझापुरि भरहेसर थापीय, तक्षशिला वाहूवलि आपीय
अवर अठाणु वर नयर ॥ १० ॥

दान दियइ जिणवर संवत्सर, विसय विरत्त वहइ संजमभर
सुर असुरा नरि सेवीइए ॥ ११ ॥

परमताल पुरि केवल नाणु, तस ऊपन्नूं प्रगट प्रमाणू
जाण हवुं भरहेसरहं ॥ १२ ॥

पाखर पंखि कि पंखरूय, ऊडाऊडाँहि जाइं तु
हुँफइं तलपइं ससइं धसइं, जड़इं जकारीय धाइ तु ॥ २४ ॥
फिरइं फेकारइं फोरणइं, फुड़ फेणाउलि फार तु
तरणि तुरंगम सम तुलइं; तेजीय तरल ततार तु ॥ २५ ॥
धडहडंत धर द्रम दमीय, नह रूंधइं रहवाट तु
रव भरि गणइं न गिरि गहण, थिर थोभइं रहथाट तु ॥ २६ ॥
चमर चिंध धज लहलहइं ए, मिल्हइं मयगल माग तु
वेगि वहंता तींह तणइं ए, पायल न लंहइं लाग तु ॥ २७ ॥
दडवडत दह दिसि दुसह ए, सरिय पायक चक्क तु
अंगो अंगिइं अंगमइं, अरीयणि असरणि अणंत तु ॥ २८ ॥
ताकइं तलपइं तालि मिलिहिं, हणि हणि हणि पभणंत तु
. आगलि कोइ न अछइ भलु ए, जे साहमु झूझंत तु ॥ २९ ॥
दिसि दिसि दारक संचरीय, वेसर वहइं अपार तु
संख न लाभइं सेंन तणीं, कोइ न लहइं सुधि सार तु ॥ ३० ॥
बंधव बंधवि नवि मिलइं ए, न वेटा मिलइं वाप तु
सामि न सेवक सारवइं, आपहिं आप विधाप तु ॥ ३१ ॥
गयवडि चडीउ, चक्कधरो, पिंडि पयंड भूयदंड तु
चालीय चिहुंदिसि चलचलीय, दिइं देसाहिव दंड तु ॥ ३२ ॥
वज्जीय समहरि द्रम द्रमीय, घण निनाद निसाण तु
संकीय सुखरि सग्ग सवे, अवरहं कमण प्रमाण तु ॥ ३३ ॥
ढाकढूक त्रंवक त्रणइं ए, गाजीय गयण निहाण तु
षड पंडह पंडाहिवहं, चालतु चमकीय भाण तु ॥ ३४ ॥
भेरीय रव भर तिहुँ भूयणि, साहित किमइं न माइ तु
कंपिय पय भरि शेष रहिउ, विण साहीउ न जाइ तु ॥ ३५ ॥
सिर डोलावइ धरणि हिं ए, टूक टोल गिरि शृंग तु
सायर सयल वि झलझलीय, गहलीय गंग तुरंग तु ॥ ३६ ॥
खर रवि खूंदीय मेहरवि, महिपलि मेहंधार तु
उजू आलइ आउध तणइं, चाल्इं राय-खंधार तु ॥ ३७ ॥
मंडिय मंडलवइ न मुहे, ससि न कवइं सामंत तु
राउत राउतवर रहीय, मनि मूंझइं मतिवंत तु ॥ ३८ ॥

कटक न कवरिगहि भर तणु, भाजइ भेडि भिडंत तु
रेलइं रयणायर जमले, राणोराणि नमंत तु ॥ ३९ ॥
साठि सहस संवच्छरहं, भरहस भरह छ खण्ड तु
समरेंगणि साधइ सधर, वरतइ आण अखण्ड तु ॥ ४० ॥
वार वरिस नमि विनमि, भड भिडीय तानावीय आण तु
आवाठी तडि गंग तणइ, पामइ नवह निहाण तु ॥ ४१ ॥
छत्रीस सहस भउड्ध सिउ, चऊद रयण सम्पत तु
आविउ गंगा भोगवीय, एक सहस वरसाउ तु ॥ ४२ ॥

ठवणि २

तउ तिहिं आउध साल, आवइ आउधराउ नवि
तिणि खिणि मणि भूपाल, भरह भयउ लोलावडओ ॥ ४३ ॥
वारिरि वहूय अणालि, अलू आरोय अहनिसि करइ ए
अति उतपात अकालि, दाणव दल वरि दापवइ ए ॥ ४४ ॥
मति सागर किणि काजि, चक्क त (न) पुरि परवस करइ
तइंजि अम्हाइ इ राजि, धोरीय धर धरीउ धरहं ॥ ४५ ॥
देव कि धंमीउ एय, कवणि कि दानव मानविहि
एउ आखि न मुझ भेउ, वयरीय वार न लाईइ ए ॥ ४६ ॥
वोलइ मन्त्रि मयंक, संभलि सामीय चक्क धरो
अवर नहीं कोइ वंकु, चक्करयण रहवा तणउ ॥ ४७ ॥
संकीय सुरवर सामि, भरहेसर तूयं भूय भवणे
नासइं ति सुणीय नामि, दानव मानव कहि कवणि ॥ ४८ ॥
नवि मानइं तूंय आण, वाहूवलि विहुं वाहुवले
वीरह वयर विनाणु, विसमा वहडइं वीर वरो ॥ ४९ ॥
तीणि कारणि नरदेव, चक्क न आवइ नीय नयरे
विण वंधव तूय सेव, सहू कोइ सामीय साचवइ ए ॥ ५० ॥
तं ति सुणीय तीणइं तालि, कठीउ राउ सरोस भरे
भमइ चडावीय भालि, पभणइ मोडवि मूंछि मूहे ॥ ५१ ॥
जुन मानइ मझ आण, कवण सु कहीइ वाहुबले
लीलहं लेसु ए राण, भंजउं भुज भारिहिं भिडीय ॥ ५२ ॥

स मति-सागर मंति, वलि वसुहाहिव वीन वइ
नवि मनि कीजइ खंति, बन्धव सिउ कहि कवण वलो ॥ ५३ ॥
दूत पठावीयइ देव, पहिलउ वात जणावीइ ए
जु नवि आवइ देव, तु नरवर कटकई करउ ॥ ५४ ॥
तं मनि मानीय राउ, वेगि सु वेगहं, आइ-सइए
जईय सुनंदा-जाउ, आण मनावे आपणीय ॥ ५५ ॥
जां रथ जोत्रीय जाइ, सुजि आऐसिहि नरवरहं
फिरि फिरि साहमु थाइ, वाम तुरीय वाहणि तणउ ॥ ५६ ॥
आजल-काल बिराल, आवीय आडिहि उतरइ ए
जिमणउ जम विकराल, खरू खु रव उछलीय ॥ ५७ ॥
सूकीय वाउल डालि, देवि वइठीय सुर करइ ए
झंपीय झाल मझालि, धूक पोकारइ दाहिण ओ ॥ ५८ ॥
डावीय डगलइ सादि, भयरव भैरव खु करइ ए
जिमण इंगमइं विषादि, फिरीय फिरीय शिव फेकरइ ए ॥ ५९ ॥
वड जखनइं कालीयार, एकउ वेढुं उतरइ ए
नीजलीउ अंगार संचरतां, साहमु हुइ ए ॥ ६० ॥
काल भुयंगम काल, दंतीय दंसण दाखवइ ए
आज अखूटउ काल, खूटउ रहि रहि इम भणइ ए ॥ ६१ ॥
जाइ जाणी दूत, जीवह जोखि, आगमइ ए
जेम भमंतउ भूत, गिणइ न गिरि गुह वण गहण ॥ ६२ ॥
तईड नेसमि वेस, न गिणइ नइ दह नीझरण
लंघीय देस असेस, गाम नयर पुर पाटणह ॥ ६३ ॥
वाहरि वहूय आराम, सुरवर नइ तां नीझरण
मणि तोरण अभिराम, रेहइ धवलीय धवलहरो ॥ ६४ ॥
पोयण पुर दीसंति, दूत सुवेग सु गहरा हीउ
व्यवहारीया वसंति, धणि कणि कंचणि मणि पवरो ॥ ६५ ॥
धरणि तरणि ताडंक, जेम तुंग त्रिगढुं लहइ ए
एह कि अभिनव लंक, सिरि कोसीसां कणयमय ॥ ६६ ॥
पोढा पोलि पगार, पाडा पार न पामीइं ए
संख न सीहदुंयार, दीसइं देउल दह दिसिइं ॥ ६७ ॥

पेखवि पुरह प्रवेसु, दूत पहूतउ रायहरे
सिउं प्रतिहार प्रवेसु, पामीय नरवर पय नमइ ए ॥ ६८

चउकीय माणिक थंभ, माहि वइठउ वाहुवले
रूपिहि जिसीय रंभ, चमर-हारि चालइं चमर ॥ ६९

मंडीय मणिमइ दंड, मेघाडम्वर सिरि धरिय
जस पयडे भूयुदंडि, जयावंती जयसिरि वसइं ए ॥ ७०

जिम उदयाचलि सूर, तिम सिरि सोहइ मणिमुकुटो
कसतुरीय कुसुम कपूर, कुचूंवरि महमहइ ए ॥ ७१ ।

झलकइ ए कुंडल कानि, रवि शशि मंडीय किरि अवर
गंगाजल गजदानि, गाढिम गुण गज गुडअडइं ए ॥ ७२ ।

उरवरि मोतीय हार, वीरवयल करि झलहलइ ए
तवल अंगि सिणगार, खलक ए टोडरवामा ॥ ७३ ।

पहिरणि जादर चीर, कंकोलइ करिमाल करे
गुरुउ गुणि गंभीर, दीठउ अवर कि चक्कधर ॥ ७४ ।

रंजिउ चित्ति सु दूत, देखीय रणिम तसु तणीय
धन रिसहेरपूत, जयवंतु जुगि वाहुवले ॥ ७५ ।

वाहुवलि पूछेइ कुवण, काजि तुहि आवीया ए
दूत भणइ निज कानि, भरहेसरि अम्हि पाठव्या ए ॥ ७६ ।

वस्तु—राउ जंपइ, राउ जंपइ, सुणि न सुणि दूत
भरहखंड भूमीसरहं, भरह राउ अम्ह सहोयर
सवाकोडि कुमरिहि सहीय, सूरकुमर तहि अवर नरवर
मंति महाधर मंडलिय, अंतेउरि परिवारि
सामंतहसीमाड सह, कहि न कुसल सविचार ॥ ७७ ।

दूत पभणइ, दूत पभणइ, वाहुवलि राउ
भरहेसर चक्कधर, कहि न कवणि दूहवणह किज्जइ
जिहुं लहु वंधव तूय, सरिसगडयडंत गज भीम गज्जइ
जइ अंधारइ रवि किरण, भड भंजइ वर वीर
तु भरहेसर समर भरि, जिप्पइ माहरी धीर ॥ ७८ ॥

ठवणि ३

वेगि सुवेगि सु वुल्लइ, सम्भलि वाहूवलि

राउत कोइ तुह तुल्लइ, ईरिणइं अछइ रवितलि ॥ ७९ ॥

जां तव बन्धव भरह नरिंदो, जसु भुइं कंप सगि सुरिंदो
जीणइं जीतां भरह छ खंड, म्लेच्छ मनाव्या आण अखंड ॥ ८० ॥

भडि भंडत न भुयवलि भाजइ, गडयडंतु गढि गाढ़िम गाजइ
सहस बतीस मउडाधा राय, तूंय बंधव सवि सेवइं पाय ॥ ८१ ॥

चऊद रयण घरि नवइं निहाण, संख न गयघड्ड जसु केकाण
हूंय हवडां पाटह अभिषेको, तूंय नवि आवीय कवण विवेको ॥ ८२ ॥

विण बन्धव सवि संपय ऊणी, जिम विण लवण रसोइ अलूणी
तुम देसण उतकंठिउ राउ, नितु नितु वाट जोइ तुह भाउ ॥ ८३ ॥

वडउ सहोयर अनइं वड वीर, देवज प्रणमइं साहस धीर
एक सीह अनइं पाखरीउ, भरहेसर नइं नइं परवरीउ ॥ ८४ ॥

ठवणि ४

तु बाहूवलि जंपइ कहिं वयण म काचुं
भरहेसर भय कंपइ, जं जगतुं साचुं

समरंगणि तिणि सिउं कुण काछइ, जहिं बन्धव मइं सरिसउ पाछइ
जावंत जंबुदीवि तसु आण, तां अम्ह कहीइ कवण ए राण ॥ ८६ ॥

जिम जिम सुजि गढ़ गाढ़िम गाढउ, हय गय रह वरि करीय सनाढु
तस अरधासण आपइ इंदो, तिम तिम अम्ह मनि परमाणंदो ॥ ८७ ॥

जुन आव्या अभिषेकह वार, तु तिणि अम्ह नवि कीधा सार
वडउ राउ अम्ह वडउ जि भाई, जहिं भावइ तिहां मिलिसिउं जाइ ॥ ८८ ॥

अम्ह ओलगनी वाट न जोई, भड भरहेसर विकर न होइ
मझ बंधव नवि फीटइ कीमइ, लोभीया लोक भणइ लख ईम्हई ॥ ८९ ॥

ठवणि ५

चालिम लाइसि वार बन्धव भेटीजइ
चूकि म चींति विचार मूंय वयण सुलीजइ ॥ ९० ॥

वयण अम्हारूं तूय मनि मानि, भरह नरेसर गणि ठाजदानि
संतूठउ दिइ कंचण भार, गयघड तेजीय तुरल तुषार ॥ ९१ ॥

गाम नयर पुर पाटण आपइ, देसाहिव थिर थोभीय थापइ
देय अदेय न दंतु विमासइ, सगपणि कह नवि किंपि विणसइ ॥ ९२ ॥

जाण राउ ओलगिउं जाणइ, माणणहार विरोषिइं मारइ
प्रतिपन्नउं प्रगट प्रति पालइ, प्रारथिउ नवि घड़ी विमरालइ ॥ ९३ ॥

तिणि सिउं देव न कीजइ ताडउ, सुजि मनाविइ माडम आडउ
हुं हितकारणि कहुं सुजाण, कूइं कहूं तु भरहेसर आण ॥ ९४ ॥

वस्तु

राउ जंपइ, राउ जंपइ, सुणि न सुणि दूत
तविहि लहीउ भालहलि, तं जि लोय भवि भविहिं पामइ
ईमइ नीसत नर ति (नि) गुण, उतमांग जण जणह नामइ
वंभ पुरन्दर सुर असुर, तिह न लंघइ कोइ
लब्भइ अधिक न ऊण पणि, भरहेसर कुण होइ ॥ ९५ ॥

ठवणि ६

नेसि निवेसि देसि घरि मंदिरि, जलि थलि जंगलि गिरि गुह कंदरि
दिसि दिसि देसि देसिं दीपतंरि, लहीउं लाभइ जुगि सचरा चरि ॥ ९६ ॥

अरिरि दूत सुणि देवन दानव, महिमंडलि मंडल वैमानव
कोइ न लंघइ लहीया लीह, लाभइ अधिक न उछा दीह ॥ ९७ ॥

धण कण कंचण नवइ निहाण, गयघड तेजीय तरल केकाण
सिर सरवस सपतंग गमीजइ, तोइ निसत्त पणइ न नमीजइ ॥ ९८ ॥

ठवणि ७

दूत भणइ एहुभाई, पुन्निहिं पामीजइ
पइ लागीजइ भाई, अम्ह कहीउं कीजइ ॥ ९९ ॥

अवर अठाणूं जु जई पहिलूं, मिलसिइ तु तुझ मिलिउं न सयलुं
कहि विलंव कुण कारणि कीजइ, माम म निगमि वार वलीजइ ॥१००॥

वार वरापह करसण फलीजइ, ईणि कारणि जई वहिला मिलीइ
जोइ न मन सिउ वात विमासी, आगइ वारुअ वात विणासी ॥१०१॥

मिलिउ न किहा कटक मेलावइ, तउ भरहेसर तइं तेडावइ
जाण रखे कोइ झूझ करेसिइ, सहू कोइ भरह जि हियडइ धरेसिइ ॥१०२॥

गाजंता गाढिम गज भीम, ते सवि देसह लीधा सीम
भरह अछइ भाइ भोलावउ, तउ तिणि सिउं न करीजइ दावउ ॥१०३॥

वस्तु

तव सु जंपइ तव सु जंपइ, वाहुवलि राउ
अप्पह बाह भजां न वल, परह आस कहइ कवण कीजइ
सु जि मूरख अजाए पुण, अवर देखि वरवयइ ति गज्जइ
हुं एकल्लउ समर भरि, भड भरहेसर घाइ
भंजउ भुजवलि रे भिडिय, भाह न भेडि न धाइ ॥१०४॥

ठवणि ८

जइ रिसहेसर केरा पूत, अवर जि अम्ह सहोयर दूत
ते मनि मान न मेल्हइं कीमइं, आलईयाणम भंखिपि ईम्हइ ॥१०५॥

परह आस किणि कारणि कीजइ, साहस सइंवर सिद्धि वरीजइ
हीउं अनइ हाथ हत्थीयार, एह जि वीर तणउ परिवार ॥१०६॥

जइ कीरि सीह सियालिइं खाजइ, तु वाहुवलि भूयवलि भाजइ
जु गाइं वाघिणि पाई जइ, अरे दूत तु भरह जि जीपइ ॥१०७॥

ठवणि ९

जु नवि मन्नसि आण, वरवहं वाहूवलि
लेसिइ तु तूं प्राण, भरहेसर भूयवलि ॥१०८॥

जस छन्नवइ कोडि छइं पायक, कोडि वहुत्तरि फरकइं फारक
नर नरवर कुण पामइ पारो, सही न सकीइ सेना भारो ॥१०९॥

जीवन्ता विहि सहू संपाडइ, जु तुंडि चडिसि तु चडिउ पवाडइ
गिरि कंदरि अरि छपिउ न छूटइ, तूं वाहूवलि मरि म अखूटइ ॥११०॥

गय गद्दह हय हड जिम अन्तर, सीह सीयाल जिसिउ पटंतर
भरहेसर अन्नइ तूयं विहरउ, छूटिसि किम्हइ करंत न निहरू ॥१११॥

सखसु सुंपि मनावि न भाई, कहि कुणि कूडी कूमति विलाइ
मुंभि म मूरख मरि न गमार, पय पणमीय करि करि न समार ॥११२॥

गढ गंजिउ भड भंजिउ प्राणि, तइं हिव सारइ प्राण विनाणि
अरे दूत बोली नवि जाण, तुंह आव्या जमह प्राण ॥११३॥

कहि रे भरहेसर कुण कहीइ, मइं सिउं रणि सुरि असुरि न रहीइ
जे चक्किइं चक्रवृत्ति विचार, अम्ह नगरि कुंभार अपार ॥११४॥

आपणि गंगा तीरि रमंता, धसमसं धूंधलि पडीय धमंता

तउ उलालीय गयणि पडंतउ, करुणा करीय वली झालंतउ ॥११५॥

ते परि कांइ गमार वीसार, जु तुडि चडिसी तु जाणिसि सार
जउ मउडुधा मउड उतारउं, खहिरू रिल्लि जुन हयगय तारउं ॥११६॥

जउ न मारउ भरहेसर राउ, तउ लाजइ रिसहेसर ताउ
भड भरहेसर जई जगावे, हय गय रह वर वेगि चलावे ॥११७॥

वस्तु

दूत जंपइ, दूत जंपइ, सुणि न सुणि राउ
तेह दिवस परि म न गिणसि, गंग–तीरि खिल्लंत जिणि दिणि
चल्लंतइं दल भारि जसु, सेस सीस सलसलइ फणि मणि
ईमई याण स मानि रणि, भरहेसर छइ दूरि
आपापूं वेढिउं गणे, कालि उगंतइं सूरि ॥११८॥

दूत चल्लिउ, दूत चल्लिउ, कहीय इम जाम
मंतिसरि चिंतविउ, तु पसाउ दूतह दिवारइ
अवर अठाणूं कुमर वर, वाइ सोइ पहतु पचारइ
तेह न मनिउ आविउ, वलि भरहेसरि पासि
अखई य सामिय संधिवल बंधवसिउं म विमासि ॥११९॥

ठवणि १०

तउ कोपिहिं कलकलीउ काल के····य काला नल
कंकोरइ कोरंवीयउ करमाल महावल
कालह कलयलि कलगलंत मउडाधा मिलीया
कलह तणइ कारणि कराल कोपिहिं परजलीया ॥१२०॥

हऊय कोलाहल गहगहाटि गयणंगणि गज्जिय
संचरिया सामंत सुहड सामहणीय सज्जीय
गडयडंत गय गडीय गेलि गिरिवर सिर ढालइं
गूगलीया गुलगुड चलंत करिय ऊलालइं ॥१२१॥

जुडइं भिडइं भडहडइं खेदि खडखडइं खडाखडि
धाणीय घूणीय धोसवइं दंतूसलि दोत [तडा] डि
खुरतलि खोणि खणंति खेदि तेजीय तखरियां
समइं धसइं धसमसइं सादि पयसइं पाखरिया ॥१२२॥

कंधग्गल केकाण कवी करडइं कडीयाली

रणरणइ रवि रण वखर सरवर घण घाघरीयाली
सींचाणा वरि सरइ फिरइ सेलइ फोकारइ
उडइ आडइ अंगि रंगि असवार विचारइ ॥१२३॥
धसि धामइ धडहडइ धरणि रथि सारथि गाढा
जडीय जोध जडजोड जरद सन्नाहि सन्नाढा
पसरिय पायल पूर कि पुण रलीया रयणार
लोह लहर वर वीर वयर वहवटिइ अवायर ॥१२४॥
रयणीय रवि रण तूर तार त्रंवक त्रह त्रहीया
ढाक ढूक ढम ढमीय ढोल राउत रहरहीया
नेच नीसांण निनादि नीझरण निरंभीय
रण भेरी भुंकारि भारि भूयवलिहिं वियंभीय ॥१२५॥
चल चमाल करिमाल कुंत कडतल कोदंड
झलकइ सावल सवल सेल हल मसल पयंड
सींगिणि गुण टंकार सहित वाणावलि तणइ
परशु उलालइ करि धरइ भाला उलालइ
सीरीय तोमर भिंडमाल डवतार कसवंध
सांगि सकित तरूआरि छुरीय अनु नागतिवंध
हय खर रवि उछलीय खेह छाईय रविमंडल
धर धूजइ कलकलीय कोल कोपिउ काहंगल
टलटलीया गिरिटेक टोल खेचर खलभलीया
कडडीय कूरम कंधसंधि सायर झलहलीया
चल्लीय समहरि सेस सिसु सलसलीय न सक्कइ
कंचण गिरि कंधार भरि कमकमीय कसक्कइ ॥१२८॥
कंपीय किनर कोडि पडीय हरगण हडहडीया
संकिय सुरवर सग्गि सयल दाणव दडवडीया
अति प्रलंव लहकइ प्रलंब वल विध चिहुं दिसि
संचरिया सामंत सीस सीकिरिहिं कसाकसि
जोईय भरह नरिंद कटक मूंछह वल वल्लइ
कुण वाहूवलि जे उ वरव मइ सिउ वल वुल्लइ
जइ गिरि कंदरि विचरि वीर पइसंतु न छूटइ
जइ थली जंगलि जाइ किम्हइ तु मरइ अखूटइ ॥१३०॥
गज साहणि संचरीय महुणर वेढीय पोयणपुर

वाजीय वूंब न वहकीयउ वाहूवलि नरवर
तसु मंतिसरि भरह राउ संभालीउ सांचुं
ए अविमांसिउं किउं काइं आजजि तइं काचुं ॥१३१॥

बंधव सिउं नरवीर कांइं इम अंतर दीपइ
लहु बंधव नीय जीव जेम कहि कांइं न लेखइ
तउ मनि चितइ राय किसिउं एय कोइ पराठीउ
ओसरी उवनि वीर राउ रहीउ अवाठीउ ॥१३२॥

गय आगलीया गल-गलंत दीजइं हय लास
हुइं हसमस..............भरहराय केरा आवास
एकि निरन्तर वहइं नीर एकि ईंधण आणई
एक आलसिइं परतणुं पांगु आणिउं तृण ताणइं ॥१३३॥

एकि ऊतारा करीय तुरीय तलसारे वांधइं
इकि भरडइं केकाण खाण इकि चारे रांधइं
इकि झीलीय नय नीरि तीरि तेतीय वोलावइं
एकि वारू असवार सार साहण वेलावइं ॥१३४॥

एकि आकुलीया तापि तरल तडि चडीय झंपावइं
एकि गूडर सावाण: सुहड चउरा दिवरावइं
सारीय सामि न सामि आदिजिण पूज पयासइं
कसतुरीय कुंकुम कपूरि चन्दनि वनवासइं ॥१३५॥

पूज करीउ चक्करयण राउ, वइठइ भू जाई
वाजीय संख असंख राउ, आव्या सवि धाई
मंडलवइ मउडुध मु (सु ?) हड जीमइं सामंतह
सइं हत्थि दियइ तंवोल कणय कंकण झलकंतह ॥१३६॥

वस्तु

दूत चलीउ, दूत चलीउ, वाहुवलि पासि
भणइ सूर नरवर नि सुणि, भरह राउ पयसेव कीजइ
भारिहिं भीम न कवणि रणि, एउ भिडंत भूय भारि भज्जइ
जइ नवि मूरख एह तणीं, सिरवरि आण वहेसि
सिउं परिकरिइं समर भरि, सहूइ सयरि सहेसि ॥१३७॥

राउ वुल्लइ, राउ वुल्लइ, सुणि न सुणि दूत
ताय पाय पणमंतय, मुझ बंधव अति खरउ लज्जइ

तु भरहेसर तसतणीय, कहि न कीम अम्हि सेव किज्जइ
भारिइं भूयवलि जुन भिडउं, भुज भुंज भडिवाउं
तउ लज्जइ तिहूयण धणी, सिरि रिसहेसर ताउ ॥१३८॥

ठवणि ११

चलीय दूत भरहेसरहं तेय वात जणावइ
कोपानलि परजलीय वीर साहण पलणावइ
लागी य लागि निनादि वादि आरति असवार
वाहूवलि रणि रहिउ रोसि मांडिउ तिणिवार ॥१३९॥
ऊड कंडोरण रणंत सर वेसर फूटइं
अंतरालि आवइं ई याण तीहं अंत अखूटइं
राउत राउति योध–योधि पायक पायक्किहिं
रहवर रहवरि वीर वीरि नायक नायक्किइं ॥१४०॥
वेढिक विढइं विरामि सामि नामिहिं नरनरीया
मारइं मुरडीय मूंछ मेच्छ मनि मच्छर भरीया
ससइं मसइं धसमसइं, वीर धड वड नरि नाचइं
रापस रीरा रव करंति रुहिरे सवि राचइं ॥१४१
चांपीय चुरइं नरकरोडि भुयवलि भय भिरडइं
विण हथीयार कि वार एक दांतिहिं दल करडइं
चालइं चालि चम्माल चाल करमाल ति ताकइं
पडइं चिंध भूझइं कवन्ध सिरि समहरि हाकइं ॥१४२॥
रुहिर रलिलतहिं तरइं तुरंग गय गुडीय अमूझइं
राउत रण रसि रहित वुद्धि समरंगणि सूझइं
पहिलइ दिणि इम भूझ हवुं सेनह मुख मंडण
संध्या समइ ति वारणुं ए करइं भट बिहुं रण ॥१४३॥

ठवणि १२:—हिवं सरस्वती धउल

तउ तहिं बीजए दिणि सुविहाणि, उठीउ एक जी अनलवेगो
सडवड समहरे वरस ए वाणि, छयल सुत छलियए छावडु ए
अरीयण अंगमइ अंगोअंगि, राउ तो रामति रणि रमइं ए
लडसड लाडउ चडीय चउरंगि, आरेयणि सयंवर वरइं ए ॥१४४॥

त्रूटक

वरवरइं सयंवर वीर, आरेणि साहस धीर

मंडलीय मिलिया जान, हय हीस मंगल गान
हय हीस मंगल गानि गाजीय, गयण गिरि गुह गुमगुमइ
धमधमीय धरयल ससीय न सकइ, सेस कुलगिरि कमकमइ
धसं धसीय धायइ धारधा वलि, धीर वीर विहंडए
सामंत समहरि, समु न लहइ मंडलीक न मंडए ॥१४५।

धउल

मंडए माथए महियलि राउ, गाडिम गय घड टोलव ए
पिडिपर परवत प्राय, भड धड नरवए नाचवइ ए
काल कंकोल ए करि करमाल, भाभए भूभिहि भलहलइ ए
भांजए भड घड जिम जम जाल, पंचायण गिरि गडयड ए ॥१४६॥

त्रूटक

गडयडइ गजदलि सीहु, आरेणि अकल अबीह
धसमसीय हयदल धाइ, भडहडइ भय भडिवाइ
भड-हडइ भय भडवाइ भुयवलि, भरीय हुइ जिम भींभरी
तहि चन्द्र चूडह पुत्र परवलि, अपिउ नरवइ नर नरतरी
वसमलीय नंदण वीर वीसमू, सेल सर दिखाड ए
रहु रहु रे हणि हणि·······भणंतू अपड पायक पाडए ॥१४७॥

धउल

पाडीय सुखेय सेणावए दन्त, पूठिहि निहणीय रणरणीय
सूर कुमारह राउ पेखंत, भिरडए भुयदंड वेंउ··········
नयणिहि निरसीय कुपीयउ राउ, चक्करयण तउ संभरइ ए
मेल्हइए तेह प्रति अति सकसाउ, अनलवेगो तहि चितवइ ए ॥१४८॥

त्रूटक

चितवईय सुहडह राउ, जो अई उपूटऊं आउ
हिव मरण एह जि सीम, रंजइअ चक्रवृति जीम
रंजवईय चक्रवृति जीम इम, भणि चकु मुठिहि पडपली
संचरिउ सूरउ सूर मंडलि, चकु पुहचइ तहि वली
पडपडीय नंदण चन्द्र चूडह, चन्द्रमडल मोह ए
भलहलीय भालि भमालि तुठिहि, चवक तहि तहि रोह ए ॥१४९॥

धउल

रोहीउ राउत जाइ पातालि, विज्जाहर विज्जा वलिहि

चक्क पहूचए पूठि तीरिंग तालि, वोलए वलवीय सहस जसो
रे रे रहि रहि कुपीउ राउ, जित्थु जाइसि जित्थु मारिखु ए
तिहूयणि कोइ न अछइ उपाय, जय जोषिम जीणइ जीवीइ ए ॥१५०॥

त्रूटक

जीविवा छंडीय मोह, मनि मरणि मेल्हीय थोह
समरीय तु तीणि ठामि, इकु आदि जिणवर सामि
[इकु आदि जिणवर सामि] समरीय, वज्जपंजर अणसरइ
नरनरीउ पापलि फिरीउ तस सिरू, चक्क लेइ संचरइ
पयकमल पुज्जइ भरह भूपति, वाहुवलि वल खलभलइ
चक्रपाणि चमकीय चीति कलयलि, कलह कारिणि किलगिलइ ॥१५१॥

धउल

कल गिलइ चक्रधर सेन संग्रामि, वोलए कवण सु वाहुबले
तउ पोयण पुर केरउ सामि, वरवहं दिसए दस गुण ए
कवण सो चक्क रे कवण सो जाख, कवणसु कहीइए भरह राउ
सेन संहारीय सोधउं साष, आज मल्हावउं रिसह वंसो

ठवणि १३ : हिवं चउपइ

चन्द्र चूड विज्जाहर राउ, तिणि वातइं मनि विहीय धिसाउ
हा कुल मंडण हा कुलवीर, हा समरंगणि साहस धीर
कहिइ कहि नइं किसिउं घणुं, कुल न लजाविउं तइं आपाणउं
तइं पुण भरह भलाविउ आप, भलु भणाविउ तिहूयणि बापु
सुजि वोलइ वाहूवलि पासि, देव म दोहिलुंईं हीइ विमांसि
कहि किण ऊपरि कीजइ रोसु, एहिंजि देवहं दीजइ दोसु
सामीय विसमु करम विपाउ, कोइ न छूटइ रंक न राउ
कोइ न भांजइ लिहिया लीह, पामइ अधिक न ओछा दीह
भंजउं भूयवलि भरह नरिंद, मइं सिउं रणि न रहइ सुरिंद
इम भणि वर वीय वावन वीर, सेलइ समहरि साहस धीर
धसमस धीर धसइं धडहडइं, गाजइ गजदलि गिरि गडयडइं
जसु भुइ भड हड हडइ भडक्क, दल दड वडइ जि चंड चडक्क
मारइ दारइ खल दल खणइ, हेड हयोहंणि हयदल हणइ
अनल वेग कुण कूखइं अछइं, इम पचारीय पाडइ पछइ
नरू निरुवइ नरनरइ निनादि, वीर विणासइ वादि विवादि

तिन्नि मास एकल्लउ भिडइ, तउ पुण पुरउ चक्रह चडइ
चऊद कोडि विद्याधर सांमि, तउ भूरह रतनारी नामि
दल दंदोलिउ दउढ वरीस, तउ चक्किइं तसु छेदीय सीस
रतन चूड विद्याधर धसइ, गंजइं गयवड हियडइ हसइ
पवन जय भड भरहु नरिंद, सु जि संहारीय हसइं सुरिंद
वाहुलीक भरहेसर तणु, भड भांजणीय भीडीउ घणु
सुरसारी वाहूवलि जाउ, भडिउ तेण तहिं फेडीय ठाउ
अमित केत विद्याधर सार, जस पामीय न पौरुप पार
चल्लिउ चक्रधर वाजइ अंगि, चूरिउ चक्रिहि चडिउ चउरंगि
समर वंध अनइ वीरह वंध, मिलीउ समहरि विहुं सिउं वंध
सात मास रहीया रणि वेउ, गई गहगहीया अपछरा लेउ
सिर ताली दुर ताली नामि, भिडइ महाभड वेउ संग्रामि
आव्या वरवहं वाथोवाथि, परभवि पुहता सरसा साथि
महेन्द्र चूड रथचूड नरिंद, झूझइं हडहड हसइं सुरिंद
हाकइं तकइं तुलपइं तुलपइ आठि मासि जई जिमपुरि मिलइं
दंड लेई धसीउ युरदादि, भरतपूत नरनरइ निनादि
गंजीउ वलिं वाहूवलि तणउ, वंस मल्हाविउ तीणि आपणु
सिहरथ उठीउ हाकंत, अमित गति झंपिउ आवंत
तिन्निमास धड धूजिउं जास, भरह राउ मनि वसिउ वासु
अमित तेज प्रतपइ तहिं तेजि, सिउं सारगिइं मिलिउ हेजि
धाइं धीर हणइं वे वाणि, एक मास निवडया नीयाणि
कुंडरीक भरहेसर जाउ, लस भडत न पाछउ पाउ
द्रढदीय दलि वाहूवलि राय, तउ पय पंकइ प्रणमीय ताउ
सूरिजसोम समर हाकंत, मिलिया तालि तोमर ताकंत
पांच वरिस भर भोलीय घाइ, नीय नीय ठामि लिवारिआ राइ ॥१७२॥
इकि चुरइं इकि चंपइं पाय, एकि डारइं एकि मारइं धाइ
झल झलन्त झूझइ सेयंस, धनु धनु रिसहेसरनुं वंस
सकमारी भरहेसर जाउ, रण रसि रोपइ पहिलउ पाउ
गिणइ न गांठइ गजदल हणइ, घणरसि धीर घणावइ घणइ
वीस कोडि विद्याधर मिली, ऊठिउ सुगति नाम किलिगिली
शिव नंदनी सिउं मिलीउ तालि, वासठि दिवस विहुं जमजालि
कोपि चडिउ चल्लिउ चक्रपाणि, मारउं वयरी वाण विनाणि
मंडी रहिउ वाहूवलि राउ, मंजउं भणइ भरह भडिवाउ ॥१७६॥

विहुं दलि वाजि रणि काहली, खलदल खोणि खे खल भली ॥१७७॥

उडीय खेह न सूझइ सूर नवि जाणि सवार असूर
पडइं सुहड धड धायइं धसी, हणइं हणोहणि हाकइं हसी ॥१७८॥

गडयड गघघड ढींचा ढलइं, सूना समा तुरंग मग तुलइं
वाजइं धणुहीं तणां धोंकार, भाजइं भिड़त न भेडिगार ॥१७९॥

वहइं रुहिर नइ सिखर तरइं, री री या रट राषस करइं
हयदल हाकइ भरह नरिंद, तु साहसु लहइ सग्गि सुरिंद ॥१८०॥

भरह जाउ सरमु संग्रामि, गाजइ गजदल आगलि सामि
तेर दिवस भड पडिउ धाइ, धूणि सीस वाहूवलि राइ ॥१८१॥

तींह प्रति जंपइ सुरवर सार, देखि एवडु भड संहार
कांइ मरावउ तम्हि इम जीव, पडसिउ नरकि करंता रीव ॥१८२॥

गज़ ऊतारीय वंधव वेउ, मानिउं वयण सुरिंदह तेउ
पइसइं मालाखाडइ वीर, गिरिवरं पाहिइं सवल शरीर
वचन झूझि भड भरहु न जिणइ, दृष्टि झूझि हारिउं कुण अणइ
दंडि झूझि झड झंपीय पडइ, वाहुपासि पडिउ तडफडइ ॥१८४॥

गूडा समु धरणि मझारि, गिउ वाहूवलि मुष्टि प्रहारि
भरह सवल तइं तीणइं धाइ, कंठ सगाणउ भूमिहिं जाइ ॥१८५॥

कुपीउ भरह छ खण्डह धणी, चक्र पठावइ भाइ भणी
पाखलि फिरी सु वलीउं जाम, करि वाहूबलि धरिउं ताम ॥१८६॥

वोलइ वाहूवलि वलवंत, लोह खंडि तउ गरवीउ हंत
चक्र सरीसउ चूनउ करउं, सयलहं गोत्रह कुल संहरउं ॥१८७॥

तु भरहेसर चिंतइ चींति, मइं पुण लोपीय भाईय भीत्ति
जाणउं चक्र न गोत्री हणइ, माम महारी हिव कुण गिणइ ॥१८८॥

तु वोलइ वाहूवलि राय (उ), भाईय मनि म म धरसि विसाउ
तइं जीतउं मइं हारिउं भाइ, अम्ह शरण रिसहेसर पाय ॥१८९॥

ठवणि १४

तउ तिहिं च चिंतइ राउ, चडिउ संवेगइं वाहुवले
दूहविउ ए मइं वडु भाय, अविमांसिइं अविवेक वंति ॥१९०॥

धिग धिग ए एय संसार, धिग धिग राणिम राजसिद्धि
एवडु ए जीव संहार, कीधउ कुण विरोधवसि

कीजइ ए कहि कुण काजि, जउ पुण बंधव आवरइ ए
काज न ए ईणइ राजि, धरि पुरि नयरि न मन्दरिहि ॥१९२॥
सिरवर ए लोच करेइ, कासगि रहीउ वाहुबले
अंसूउ ए अंखि भरेउ, तस पय पणमए भरह भडो ॥१९३॥
बंधव ए कांइ न वोल, ए अविमांसिउं मइं किउं ए
मेल्हिम ए भाई निटोल, ईंणि भवि हुं हिव एकलु ए ॥१९४॥
कीजई ए आज पसाउ, छंडि न छंडि न छयल छलो
हियडइ ए म धरि विसाउ भाई य अम्हे विरांसीया ए ॥१९५॥
मानई ए नवि मुनिराउ, मौन न मेल्हइ मन्नवीय
मुक्कइ ए नहु नीय माण, वरस दिवस निरसण रहीय ॥१९६॥
बंभिउ ए सुंदरि वेउ, आवीय बंधव वूझवइं ए
ऊतरी ए माण—गयंद, तु केवलिसिरि अणसरइ ए ॥१९७॥
ऊपनूं ए केवलनाण, तु विहरह रिसहेस सिउं
आवीउ ए भरह नरिंद, सिउं परगहि अवभपुरी ए ॥१९८॥
हरिपीया ए हीइ सुरिंद, आपण पइं उच्छव करइं ए
वाजई ए ताल कंसाल, पडह पखाउज गमगमइं ए
आवई ए आयुध साल, चक्क रयण तउ रंग भरे
संख न ए जस केकाण, गयघड रहवर राणिमहं ॥२००॥
दस दिसि ए वरतइं आण, भड भरहेसर गहगहइ ए
रायह ए गच्छ सिणगार, वयरसेण सूरि पाटवरो ॥२०१॥
गुणगणहं ए तणु भंडार, सालिभद्र सूरि जाणीइ ए
कीधउं ए तीणि चरितु, भरह नरेसर राउ छंदि ए ॥२०२॥
जो पढ़इ ए वसह वदीत सो नरो नितु नव निहि लहइ ए
संवत ए बार (१२) एकतालि (४१) फागुण पंचमिइं एउ कीउ ए ॥२०३॥

———

# चन्दन बाला रास[1]

सामाजिक कथा वस्तु को प्रस्तुत करने वाले रासों में १३वीं शताब्दी का एक महत्वपूर्ण रास "चन्दन वाला रास" है। जन भाषा में कवि आसगु ने इस कृति की रचना की है। चन्दन वाला जैन श्राविकाओं में एक आदर्श एवं चरित्रवान महिला भक्त रही हैं, जिसने अपने ब्रह्मचर्य, सतीत्व, संयम और पवित्रता के लिए स्वयं का उत्कर्ष कर दिया। कवि आसगु राजस्थानी हैं और राजस्थान के ही नगर जालौर में इस रास की रचना हुई है। यह रचना जैसलमेर के वड़े-भंडार में सुरक्षित है तथा इसकी प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में है। यों यह रास अब प्रकाशित भी होगया है।

कवि आसगु का एक रास "जीवदया रास" है।[2] यह कृति भी सं० १२५७ के आस-पास की ही है। परन्तु वहुत अधिक महत्व को न होने और अधिकांशतः धर्मोपदेश से सम्वन्धित होने से, इसका साहित्यक महत्व नहीं है। चन्दनवाला रास की एक विशेषता यह है कि इसमें कृति का लेखक, लेखन काल, तथा लेखन स्थान सभी को कवि ने स्पष्ट कर दिया है। कृति की एक ही प्रति उपलब्ध होने से पाठ कहीं-कहीं त्रुटित रह गया मिलता है। यह पाठ सं० १४३७[3] की स्वाध्याय पुस्तिका से मिला है।[4]

चन्दनबाला रास एक कथात्मक कृति है जिसमें घटनाओं के कुतूहल वड़े विचित्र हैं। रास की मुख्य संवेदना चारित्रियक पवित्रता, स्त्री समाज में नारी

---

१—देखिये:—राजस्थान-भारती; भाग ३, अङ्क ३—४, पृ० १०४—१११ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख 'कवि आसगु रचित चन्दन वाला रास।'

२—भारती विद्या : श्री मुनि जिनविजय, भाग तृतीय, अङ्क १, पृ० २०६।

३—देखिये:—पुष्पिका लेख : सं० १४३७ वैसाख सुदी २ सुगुरू श्री जिनराज सूरि सदुँपदेशेन व्य० देया पुत्र्या देव गुविन्ना चिन्तामणि भूषित मस्तक या भांकू श्राविकया आत्म पुण्यार्थ श्री स्वाध्याय पुस्तिका लेखिता" (जैसलमेर वड़े भण्डार की प्रति, पत्रांक ३७१ से ३७४)।

४—जैसलमेर बड़े भण्डार की प्रति पत्रांक ३७१ से ३७४।

के सम्मान की अपेक्षा, अत्याचार का दमन तथा ज्ञान से मानव की सर्वांगीण प्रगति आदि का प्रचार करना है।

रास का प्रारम्भ ही कवि मंगलाचरण के साथ करता है:—

"जिण अभिणव सरसइ भणए
पुहविहिं भरह-खेत्ति जं वीत
वीर जिणंदह पारणए
निसुणउ चन्दन-वाल चरित [1]

चन्दन बाला चम्पानगरी के राजा दधिवाहन और रानी धारिणी की लड़की थी। चम्पानगरी पर कोशाम्बी के राजा शतानीक ने चढ़ाई कर दी। भयंकर युद्ध के बाद शतानीक का एक सेनापति धारिणी और चन्दन बाला का हरण कर ले गया। धारिणी ने आत्म सम्मान को संकट में देख अपघात कर लिया। सेनापति ने चन्दन बाला को शाह के हाथ बेच दिया। सेठ की स्त्री ने उसे कारागार की सी असह्य वेदना दी। चन्दन बाला अपने सतीत्व संयम; व चरित्र पर अटल रही उसने महावीर को अपने हाथों भोजन कराया और अन्त में उन्हीं से दीक्षा ग्रहण करके कैवल्य ज्ञान को प्राप्त हुई।

कृति की इस संक्षिप्त कथा में कवि ने कारुण्य धारा बहाई है। ३५ छन्दों की इस छोटी-सी रचना में उसने प्रबन्धात्मकता का सफल निर्वाह किया है। उसका कथा तत्व अनेक कुतूहलों से युक्त एवं अपने में पूर्ण है।

धारिणी व चन्दन बाला के रूप चित्रण के उदाहरण देखिए—

(क) दधिवाहण गेहिणी सु पाहिणी, रूपवंतसा धारिणी राणी
तुंग पयोहर खीरसर, कुडिल केस भुय-नयण सुचंगी
हंस गमणि सा मृग नयणि नव जोवण नव नेह सुरंगी

और बालिका चन्दन बाला का चंचल यौवन और भोलापन कवि की वर्णन शैली की सरसता व सरलता का प्रतीक है:—

"भुंभर भोली ता सुकुमाला
नाउ दीन्हु तस चंदण वाला (२१)

.... .... ....

पाये घावरिया झमकारउ, गलइ रुलंतउ सोहइ हारउ
कन्ने वीड स सरलिया, तसु सिरि लंबउ केस कलाउ
धणवइ धीय स चन्दणह, दीखिय देह पणासइ पाउ (२२)

---

१—चन्दन बाला रास : राजस्थान भारती, वर्ष ३, अङ्क ३–४, पृ० १०७–१२।

सेठ ने चन्दन बाला को दासी के रूप में क्रय किया था, पर उसके सहभाव विनम्रता और चारित्रियक उत्कृष्टता से उसे पुत्री की भांति दुलार करने लगा। वह भी उसे पिता की भांति पूजने लगी। एक दिन अपने पैर धोते समय सेठ ने उसके बालों को अपनी गोदी में रख लिया। सेठ की स्त्री यह देख कर आग बबूला होगई। उसने सेठ की अनुपस्थिति में उसका सिर मुंडवाकर हथकड़ी, बेड़ी पहिना कर तहखाने में डाल दिया। तीन दिन तक उसने स्वयं को "जिन" की तपस्या में लीन रखा। अन्न का कण उसे नहीं मिला। कवि ने रुदन करती संवेदित बाला का चित्रण किया है:—

"माइ ताय मति बुद्धि ण लाधी
पर घर मंडण दुक्खे दाधी

आधो खंडा तप किआ, किव आभइ बहु सुक्ख निहाणु
फूटि रे हियड़ा! वज्जमअे अन्नह जम्पि नंदिनंदाणु (२६)

इधर श्री महावीर स्वामी ने भी सिर मुंडे हुए, कैद में हथकड़ी, बेड़ी, तीन दिन की भूखी "अट्ठम तप" करने वाली रोती हुई स्त्री के हाथ से ही पारणा करने की प्रतिज्ञा कर रखी थी, अतः चन्दन बाला ने उसे पूरा किया।

महावीर को भोजन कराने पर इन्द्र ने १२।। करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की वर्षा की और इन्हीं मुद्राओं को दान कर चन्दन बाला ने कैवल्य प्राप्त किया।

वस्तुतः कवि ने रास में वीर करुण और शान्त रस का परिपाक किया है। युद्ध के समय तथा लूटपाट का कवि ने अच्छा चित्र खींचा है:—

वज्जिय ढक्क बुक्क नीसाण, केणवी खंचिय तुरिय केकाण
वल्लिया मंडलिक मउडधार, सेलकुंतु घण वटिसइ मेहू
मूभू करइ संग्राम भरि, अंगो अंगी भिडीया बेउ

और इस द्वन्द्व युद्ध के बाद विजयी ने नगर को खूब लूटा। जिस जिस ने जो जो चाहा, लूट में लूटा। वर्णन की सजीवता दृष्टव्य है:—

हत्थि कुंभ थलि खिवियउ पाउ, भयपडियउ दहि वाहण राउ
घोडइ चडि नासिउ गयउ, सीहहं चितउ पूणइ काउइ
तुरय थट्ठ गय घड लइय तउ जीकउ स्त्रयणिय राई (१४)
केणवि लद्धा रयण भंडार, केणवि कंचरा तणा कुठार
केणवि पविउ धन्नु धणु लूसउ, चोर चरःदडदडिया
पाहकु अंकु फिरन्तु दंदि धीय, सहित धारिणि पिउपड़िया (१५)

वस्तुतः कवि ने इन वर्णनों में घटनाओं की प्रधानता व कुतूहल को

मुख्यता प्रदान की है। पूरी कथात्मक कृति में घटनाओं के चार बड़े मोड़ हैं। कृति निर्वेदांत है। भाषा सरल और शब्द चयन में गेयता है।

कथात्मकता जैन रासों में बहुधा सुरक्षित मिलती है। यह रास कथा प्रधान चरित काव्य है। छन्द और अलंकारों की दृष्टि से कृति का विशेष महत्व नहीं लगता। परन्तु भाषा तथा सरल भाव पूर्ण शब्दावली के कारण रास का महत्व बढ़ जाता है। भाषा की प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें गुजराती और राजस्थानी का मिश्रण है। राजस्थानी और प्राचीन गुजराती के शब्दों की भरमार है। ऐसी भाषा को सरलता से पुरानी हिन्दी कहा जा सकता है।

कवि ने रास की मुख्य संवेदना को अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में से अन्त में कैवल्य की प्राप्ति से सार्थक किया है, जो काव्य का प्रयोजन है।

"संखेपिणि जिण दिअउ दाणु, वीर जिणंदह केवल नाणु
चंदण पढम पवत्तिणिय, परमेसरह निव्वाणह जंति
बतीसा सय खिणतहि, अखलिउ सुहु सिद्धिहि माणंति— (३४)

अन्त में कवि ने असत् पर सत् की विजय दिखाकर रचना के मन्तव्य और रास के उद्देश्य को भी स्पष्ट किया है:—

"एहु रासु पुण वृद्धिहि जंति, भाविहि भगतिहि जिण हरिदिति
पढइ पढावइ जे सुणइ, तह सवि दुक्खइ खहयहं जंति
जालउर नउरि आसगु भणइ, जम्मि जम्मि सउ सरसत्ति (३५)

अतः रास खेलने, गाने, पढ़ने, पढ़ाने तथा सुनने के लिए लिखा गया है। रचना की शैली वर्णनात्मक, सरल व स्पृहणीय है। भाषा की सरलता व शब्दावली का प्रवाह द्रष्टव्य है। जन भाषा काव्य की दृष्टि से कृति का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। १३वीं शताब्दी की कथात्मक तथा घटना प्रधान कृतियों में भाषा व शैली की दृष्टि से चन्दन बाला रास का महत्व अपने ही प्रकार का एवं प्रशंसनीय है।

वस्तुतः ऐसे ही रास में मानवता, चरित्र-निर्माण, स्त्री सम्मान, तथा जीवन की बहुमुखी प्रगति का सन्देश छिपा है।

---

## स्थूलिभद्र रास [1]

१३वीं शताब्दी में चन्दन बाला रास की ही भांति एक घटना व कथा प्रधान रास स्थूलिभद्र रास मिलता है। स्थूलिभद्र का जीवन जैन नायकों में नेमिनाथ और जम्बू स्वामी की भाँति शृंगार से सम्बद्ध रहा है। स्थूलिभद्र और कोशा वेश्या के प्रति अनेक शृंगारिक तथा उपदेश प्रधान कथाओं की रचना की गई है।

प्रस्तुत रचना की दो प्रतियां उपलब्ध है। जिनमें पहली अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में तथा दूसरी सं० १४३७ में लिखी हुई है और जैसलमेर भंडार में सुरक्षित है। पहली प्रति भी १५वीं शताब्दी की ही है।

स्थूलिभद्र रास के नायक स्थूलिभद्र पर काव्य लिखने की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। स्थूलिभद्र का जीवन आचार्य हेमचन्द के ग्रन्थ के परिशिष्ट पर्व में मिल जाता है। [2] संस्कृत में भी इनके जीवन पर अनेक ग्रन्थ तथा सूर्य चन्द्र पर रचित गुणमाला महाकाव्य आदि रचे गये हैं। कालान्तर में तो गुजराती, राजस्थानी या पुरानी हिन्दी में स्थूलिभद्र पर सैंकड़ों की संख्या में रचे रास फाग और गीत मिलते हैं। सं० ६८६ में शकटार का जीवन चरित्र हरिषेण के बृहत् कथा कोष के अन्त में "शकटाल मुनिकथानकम्" नाम से प्रकाशित है। अतः इस रास की कथा वस्तु के लिए बृहत् कथाकोष व परिशिष्ट पर्व आदि ग्रन्थों में पर्याप्त सहायता ली जा सकती है।

रास के कर्त्ता ने अपना नाम स्पष्ट नहीं किया है, पर अन्त में एक शब्द "जिणधाम" आता है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि लेखक का नाम सम्भवतः जिनधर्म सूरि था। स्वर्गीय श्री मोहनलाल देसाई ने प्रस्तुत रासकर्ता का नाम धर्म दिया है। [1] साथ ही उन्होंने इसका रचना काल भी सं० १२६६ के आस पास बताया है।

---

१–हिन्दी अनुशीलन; वर्ष ७, अङ्क ३, पृ० ४० पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख–"स्थूलिभद्र रास"

२–वही, पृ० २६।

स्थूलिभद्र रास घटना प्रधान है जिसमें कवि ने अनेक कौतूहलों का समावेश किया है। रास कथा प्रधान है। यद्यपि यह स्थूलिभद्र के जीवन तथा उनकी साधना पर सीधा प्रकाश नहीं डालता, परन्तु कवि ने अपने कौशल द्वारा कुछ अवान्तर घटनाओं का सृजन कर स्थूलिभद्र को लौहघट के रूप में संयम का साक्षात् अवतार ही सिद्ध कर दिया है।

कवि ने रास का प्रारम्भ शासन देवी और वागीश्वरी का स्मरण कर किया है तथा प्रारम्भ में ही शकटार और वररुचि पण्डित का संघर्ष दिखाया है। संघर्ष का कारण केवल यह था कि वररुचि की गाथाएं राजाओं को बड़ी प्रिय थी और मन्त्री शकटार (महता) को राजा द्वारा वररुचि को दिया आदर ठीक नहीं लगा। उसने अपनी बालिकाओं द्वारा उसकी गाथाओं को याद करवा दिया एक को एक बार दूसरी को दो बार और तीसरी को तीन बार। इस क्रम से शकटार की लड़कियों ने वररुचि की नित नवीन कही जाने वाली गाथा को याद करके पुराना सिद्ध कर दिया। पण्डित वररुचि ने भी शकटार के विरुद्ध राजा को भड़काया कि यह मन्त्री राजा को मरवा कर उसके स्थान पर अपने लड़के को राजा बनाना चाहता है। राजा यह सुनकर क्रुद्ध हो गया। शकटार ने अपने लड़के को सिखाकर स्वयं की हत्या कराने में ही परिवार का कल्याण समझा। मन्त्री शकटार को क्रुद्ध नन्द ने मार कर परिवार के सामने, (उसके लड़के के सामने, जिसने अपने पिता के कहने के अनुसार उनको मरवा कर स्वयं को राज भक्त सिद्ध किया था), मंत्रित्व का प्रश्न रखा। स्थूलिभद्र के पास भी यह प्रश्न पहुंचा। उस समय वे कोशा वेश्या के यहाँ भोगलिप्त रहा करते थे। भाई की राज्यलिप्सा व पिता की हत्या देखकर उन्होंने "मया आलोचितम्" या "मणुआलोचिउ" कहकर अपने केश उखाड़ डाले तथा विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण करली। कवि ने कथा में उत्साह निष्पन्न करने के लिए ही इन घटनाओं का सृजन किया है। ये कहीं अन्यत्र पूर्व रचित तथा परवर्ती ग्रन्थों में नहीं मिलतीं। वर्णन व भाषा की सरलता दृष्टव्य है—

पणमउं थूलिभद्द इहु रासु, पाडलि पुत्ति नयर जसु वासु
नन्दह रायत नंदह राजे, मन्त्री सगडाल अम्हारइ काजे
थूलिभद्द पिउ ताव सगडालु महंतउ, चितइ समिय काजे रालइ अंबुजंतउ
राय तणइ नितु पंयितु आवइ, अहिणव गाहा रचिउ भणावइ
पण्डितु दानु कियउ नितु राइं, दीजइ द्रमह पंच सयाइं

× × ×

अन्य दिवसि जं अवसरि आवइ, महता वेटी राव तेडावइ
सवि वर वर धिय लागिय बोलिय, सुललित मात्र न मेल्हह खोलिइ

इक संथिवि संथिय वाल्वा जं त्रि संथिय जंपइ,
वर रूचि रूडउ राउमणु रोसिहिं कंपइ—

वररुचि पण्डित ने शकटार की मृत्यु के लिए द्रव्य देकर अपने शिष्यों की सहायता से अनेक षड़यन्त्र किये उसी का वर्णन देखिये:—

तावह पंडितु वाहिरि धाइउ, द्रम्म थवइ नितु गंगह जाइउ
पसरह लोयह द्राम दिखालइ, नरवइ वह अम्ह नवि पालइ
अेत्थंतरि महतेण तउ द्रम उसरिय,
पंडित उच्छउ घाउतलि दोरउ सारिय
तउ पंडित कोपानल चडियउ, घाठउ हीयउ सूनउ थीयऊ
तउ चेनु कोपिरायां पोसइ, नंदु हणिउ सिरियउ राउ होसइ
नयर दुवारे सक्षे नखइ संभालियउ,
महता रूठउ राउ अछतउ नितु टलियउ
जांव महंतउ अवसरि आवइ, तांव पुठि दियइ पुणुनरवइ
मुहतइ जाणिउ मूल विणासइ, बंभण नयणे नरवइ रूसिउ
सिरियउ भणइ न घल्लउ घाउ, जीविउ लांघि लियइ जउ राउ
महतइ धरह कुडुकहु स्वामिउ, असिउ हलाहलु रयसिरु नामिउ
सिरियउ कहइ नरिंदह जाइउ, अम्ह थूलभदु जेठउ भाइउ
तसु तणि मुंद्र अम्ह नवि छाजइ, भामिणि विरहु क्रिमइ जइ भाजइ
तउ निसुणेविणु नरवइ जाणिउ, मुंद्र कहइ लइ थुलिभद्र आणिउ
रायह मंदिरि थूलिभद्र पहुतउ, "मणुआलोचिउ" भोग विरत्तउ-(२-२१)

उक्त उद्धरण में कवि ने राजकीय षड़यंत्रों और कर्मचारियों की पारस्परिक ईर्ष्या तथा राजा की "क्षणेःरुष्टाः क्षणेः तुष्टाः" वाली प्रकृति को स्पष्ट किया है। भोगलिप्त स्थूलिभद्र के जीवन में एक विपरीत अध्याय का प्रारम्भ यहीं से हो जाता है। दीक्षा लेने पर उसके अन्य गुरु भाई भी चतुर्मास के स्थान कोई साँप के बिल पर, कोई सिंह की गुफा पर, कोई कुएं के पास मांगता है, पर स्थूलिभद्र उसी कोशा वेश्या के यहाँ जाते हैं। स्थूलिभद्र और कोशा के वर्णनों में इस रास में कवि का मन बिलकुल नहीं रमा है। न उसने कोशा के नखशिख व सौंदर्य का ही वर्णन किया है। आगे कवि एक अन्य कथा में रम जाता है, जो स्थूलिभद्र के ही एक गुरु भाई से सम्बद्ध है। स्थूलिभद्र ने मदन का पूर्ण दलन किया वे पंच व्रत का पालन कर पक्के संयमी हो गये। यही नहीं, उन्होंने कोशा वेश्या को आमूलचूल बदल दिया। जब चतुर्मास करके सब मुनि पुनः आये, तो गुरुजी ने स्थूलिभद्र को ही सबसे श्रेष्ठ बताया। इस पर एक मुनि

शुद्ध हो गये और उन्होंने भी दूसरा चतुर्मास उसी कोशा के यहाँ जाकर किया। पर वे कामासक्त होगये। कोशा ने उन्हें रत्न कम्बल लाने नेपाल भेजा। काम विमोहित मुनि ने यह सब किया, पर अन्त में कोशा से ही उन्हें हार माननी पड़ी। कोशा का मुनि को उपदेश, मुनि की काम विमोहित अवस्था, रत्न कम्बल के लिए अनेक कष्ट पाने पर मुनि की उससे कामतृप्ति की याचना, कोशा द्वारा उनकी भर्त्सना, संयम श्री का महत्व और स्थूलिभद्र की जितेन्द्रिय स्थिति का स्पष्टीकरण करना आदि अनेक चित्र कवि ने बड़ी ही मार्मिकता से संजोये हैं, जिनकी भाषा प्रवाहमय, भाव प्रवण सरल तथा चित्रात्मक है। श्रावण-भाद्रव में कामोत्पत्ति, मन की चंचल स्थिति और मुनि की विचलित अवस्था तथा कोशा के सौंदर्य के प्रति हुए व्यामोह का वर्णन देखिए:—

"वेस ससि वयणि मिग नयणि नव जोवणी,
सुविधि परिविविह परि दिट्ठ मुणि लोयणी
आवहु मुणि कहउ झुणि देस तुम्ह दुल्लही,
परिजइ तुम्हि सुज्झइ अम्हधरि ञनिक परिजइ तुम्हि सुज्झइ
मज्झु नयएउ गुरु वयणव परतु जइ झारयं,
वेस घरि पाउस भरि तं दिवसु आवियं
सावणं सलिल मुणि सील संवोलियं,
सयल दुम कंद खणिचित्तु उम्मूलियं
भाद्रवउइ वणु गुहरउ जलहरो गाजअे,
चरित पुरु पाटरणमयण भडभंजअे
ईग परिवेस धरि मुणिहि मणु गंजियं,
रमइ नर अनिकि परि पिक्खे वितंजियं
भार योपियउ किरि वोलइ मुणि छम्मिउ,
अत्थ विणु वेस पुणु निठुर वह हम्मिउ"

कोशा ने मुनि से पैसे मांगे और कहा कि विना अर्थ के यहाँ रहना सम्भव नहीं है। और काम विमोहित मुनि उन्मन्न होगये। उन्होंने कोशा की भर्त्सना सही, उनकी इसी प्रकार की विक्षिप्त शारीरिक अवस्था का वर्णन कवि ने उन्हें रत्न कम्बल लाने के लिए नेपाल तक भटका कर किया है। मुनि कम्बल लाये तो कोशा ने उसे पैरों से पोंछकर फेंक दिया:—

वेसा पभणे विणु दंमणा लेविणु, जाह राय मग्गिह रयणु
गुहु अत्थ विहुणउ हिंडइ दीणउ, मझु घरि कम्मु करेसिजउ
"जाम मुनि मेघु घणु गणइ नं चल्लिउ, कलिहिनं जल्लहिनं नइहि नं पिल्लिइ

काम धगु मत्त तगु भमइ पुट्ठि लग्गइ, नेपाल देस गउ रयण कवलह मग्गइ
वेग करि, पंथ भरि चलिउ मुणि आविउ, वेस लइ नमइ जइ कहवि लंबाविउ
आणि मुणि कवल रयणु खोलि मोल्हिउ कहइ,
पाउ मैं लाइ घणि लक्खु द्रम्मह लहइ
लाखु लाघव मुणि दिट्ठु कउडी गमइ, वेस गुणवंत जसु जम्मि चित्तु रमइ"

यहाँ तक ही नहीं, वेश्या कोशा अन्त में इसे गुरू बनकर सहायता करती है और स्थूलिभद्र का वैशिष्ट्य स्पष्ट करती है। मुनि की रत्न कम्बल लाने पर भी वेश्या ने इच्छा पूरी नहीं की, तो वह निश्वास लेने लगा। वेश्या उसे शील की महिमा बतलाती है। काम विमोहित मुनि के हृदय में भरे मोहान्धकार में कोशा स्थूलिभद्र की विजितेन्द्रियता से प्रभावित होकर प्रकाश किरण प्रदान करती है और इस प्रकार मुनि को वह चरित्र रत्न को हृदय में धारण करने की शिक्षा देती है। कवि ने इन्हीं मनोवैज्ञानिक चित्रों को बड़ी सफलता से स्पष्ट किया है। कवि का प्रत्येक मनोभाव इन वर्णनों में उसके काव्य कौशल और काव्यगत सरलता का द्योतक है:—

नियतणि जउ मुणि दीणउ थाओ, चणा भखेविणु मिरिय कुखाओ
इह गइ खंभु करीरिहिं भाजइ, थूलिभद्र जो गति कहवि न छाजइ
वह नेपालउ देस भणीजइ, वडइ कठिन तहि पुणु जाइजइ
तइ मूरख नवि जाणिउ भेउ, लक्ख रयण मुणि कवल अेहु (४०–४१)

और वेश्या ने उस कंबल से पैर पोंछकर कीचड़ में फेंक दिया और कहा कि अपने चरित्र रत्न को तो संभालो वह इससे भी गंदी जगह में जा रहा है। उसने रूपक द्वारा यह स्पष्ट किया कि नेपाल देश कितना दूर था वहां जाना कितना कठिन है यदि हे मुनि तुम ! रत्न कंबल लेने नेपाल चले गये तो क्या अपने चरित्र रत्न और संयम रत्न की प्राप्ति उस अपूर्व आनंद निर्वाण की प्राप्ति हेतु नहीं कर सकते ? उक्त पंक्तियों में इसी प्रकार की ध्वनि है।

"दिट्ठ रयल जं कद्दम भरियउ, हियडउ सुन्नह सहु वीसरियउ
तउ मुणिवरू मेल्हहि नीसासा, मज्भु तणी नवि पूरी आसा
जं जिण धम्मह किज्जइ मूलु तं तरुणत्तणि पालिउ सीलु
इसउ वयण सुहियडउ धरइ, मयण मोह त्रित्तह उत्तरइ
चितइ मुणिवरु हियइ तिरंग, संजमतरु मह रूपइ भंग
धनु धनु थूलिभद्र सो सामिउ, पाउ पणासइ लइ यइ नामिउ (४०–४४)

और मुनि अंतर्द्वन्द्व, आत्म ग्लानि और पश्चाताप से भर जाता है।

उसकी ज्ञान दृष्टि कोशा के गुरू वचनों से खुल जाती है और वह वेश्या कोशा के कहने से चरित्र्य रत्न को हृदय में धारण करता है तथा गुरु के पास जाकर पुनः दीक्षित होता है और वही मुनि स्थूलिभद्र की कृपा से देव लोक प्राप्त करता है:—

तसु ऊपरि मइं मच्छरु कीयउ, तिणि कारणि मई फलु पामीयउ
तुहु सुहु गुरु कोसा महु माया, हउं पडिबोहिउ आणि उठाया
मइं जाणिउं तउ कियउ अकम्मू, आलि वहिउ गउ माणुस जम्मू
वेसा कोसा बोल्लइ अेहु, अज्जिउ मुणिवर मन करि खेउ
चारित्त रयणु हियडु धरेहि, गुरू हुं पासि आलोयण लेहि
बहुत काल संजय पालेवि, चउदह पूरब हियइ धरेवि
थूलिभद्द जिण धम्म कहेवि, देवलोकि पहुतउ जाअे वि—(४५–४७)

वस्तुतः इसी प्रकार कवि ने स्थूलिभद्र के संयमित जीवन की दिव्य सुषमा पर प्रकाश डाला है। रास में कहीं भी उसके (शिल्प पर) गाये जाने या क्रीड़ा करने के रूप पर प्रकाश नहीं डाला गया है। सिर्फ स्थूलिभद्र के उत्कृष्ट चरित्र पर मुनि की कथा के द्वारा प्रकारान्तर से प्रकाश डालना ही कवि का मन्तव्य है। कोशा की वाणी रूपक के रूप में सामने आती है। ४७ छंदों की इस छोटी सी रचना में कवि ने बहुत सार भरा है। भाषा में अपभ्रंश के शब्दों के प्रभाव के साथ साथ अधिकांश शब्द राजस्थानी के हैं।

कवि के वाक्य सरल व शब्द चयन प्रभाव प्रवण है। कवि ने क्रोध, काम, मद, अंतर्द्वन्द्व, आत्मग्लानि तथा पश्चात्ताप के चित्रों पर सम्यक् प्रकाश डाला है। एक दो छंदों को छोड़कर पूरा रास चौपाई छंद में लिखा गया है।

जहाँ तक कथा रूढ़ि और मौलिकता का प्रश्न है, प्रस्तुत रास बड़ा महत्वपूर्ण है। १५वीं शताब्दी में मिलने वाले स्थूलिभद्र रास या स्थूलिभद्र फागु [1] की भांति कवि ने कहीं भी स्थूलिभद्र व कोशा का शृंगारिक वर्णन नहीं किया है। अतः काव्य में शृंगार आंशिक रूप से ही आपाया है। अन्त में कृति निर्वेदांत होगई है। कवि ने वररुचि की कथा, मुनि की ईर्ष्या, नेपाल जाकर काम विमोहित स्थिति में रत्न कंवल लाना आदि घटनाएं अवान्तर रखी हैं, जिनमें वह पूर्ण सफल हुआ है।

---

१–स्थूलिभद्र पर विस्तार के लिए देखिए अजन्ता, मई, १९५८ में लेखक का "आदि काल का एक शृंगारिक खण्ड काव्य : श्री स्थूलिभद्र फागु" शीर्षक लेख।

छोटी–छोटी सूक्तियाँ यथा–भामिणि विरहु क्रिमइ जइ भाजइ, चल्लिउ
णकण रयण चक्र विणु, असिउ हलाहलु रयसिरू नामिउ, सयल दुम कंद
ाणि चित उम्मूलियं, सात्रणं सलिल मणि सील सं वोलियं, चरण भरवेविणु
मरिय कुरवाग्रे, अकरनइउ संजय भारुदुप्पालउ, इह खंभु करीरिहिं भाजइ,
ाथा चारित्त रयणु हियडइ धरेहि, गुरूहुपासि आलोयण लेहि आदि अनेक
ृक्तियां हैं। रास की मुख्य संवेदना उपदेशात्मकता तथा धर्म प्रचार है। शैली
ार्णनात्मक है। काव्यात्मकता में सरस स्थल थोड़े हैं, परन्तु घटना वैचित्र्य और
कथात्मकता ने कृति की सफलता में सहायता की है।

---

# रेवंतगिरि रास

रेवंतगिरि रास १३वीं शताब्दी का प्रसिद्ध ऐतिहासिक रास है। रास के रचयिता श्री विजय सेन सूरि हैं। रचना का विषय धार्मिक है तथा कवि ने रेवंतगिरि जैन तीर्थ का महत्वपूर्ण विवेचन किया है। यह रास तीर्थ के प्रति अपार श्रद्धा रखने वाले श्रावकों की उल्लास पूर्ण, गेय तथा नृत्यमूलक अभिव्यक्ति है, जिसे कवि ने काव्यात्मक सुषमा से संवारा है। प्राचीन काल से ही इस ऐतिहासिक स्थल का महत्व रहा है। रचना का रचनाकाल तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अर्थात् सं० १२८८ है। प्रस्तुत काव्य का नवीनतम सम्पादन व प्रकाशन डॉ० हरिवल्लभ भायाणी ने किया है।

रेवंतगिरि रासा नाम का एक ग्रन्थ और भी बना हुआ है। इसकी प्रति पाटण के संघवी पाड़ा के भण्डार में है। जिसकी भाषा को श्री नाथूराम प्रेमी प्राचीन हिन्दी बतलाते हैं।[२] इसकी रचना वस्तुपाल–मंत्री के गुरु विजय सेन सूरि ने सं० १२८८ के लगभग की थी, इसमें गिरनार का और वहां के जैन मन्दिरों के जीर्णोद्धार का वर्णन है। रेवंतगिरि का परिचयात्मक उल्लेख गुजराती के विद्वानों ने भी अपने ग्रन्थों में किया है।[३]

कथा, वस्तु-शिल्प, नायक तथा अन्य वर्णनों का अध्ययन करते समय रास का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्व ज्ञात होता है। रेवंतगिरि रास प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यहां तक कि इसकी प्राचीनता के उल्लेख महापुराण में भी मिलते हैं। इसमें जिस चरित नायक की प्रतिमा, व अन्य वस्तु सौंदर्य का वर्णन किया गया है वह जैनियों के २२ वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ हैं।

---

१–प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह; श्री सी० डी० दलाल, पृ० १–७।

२–हि० जै० सा० का इतिहास; श्री नाथूराम प्रेमी पृ० २६, वि० सं० १९७३ का संस्करण।

३–देखिए–आपणा कवियो; श्री के० का० शास्त्री व जैन गुर्जर कवियो; श्री मोहनलाल देसाई।

नेमिनाथ का वृत्त ख्यात है, जिस पर अपभ्रंश में मिलने वाली कृति हरिभद्रकृत "नेमिनाथ चारिउ" है।[1]

प्रस्तुत रास में यात्रा वर्णन, संघवर्णन तथा मूर्ति स्थापना वर्णन है। रास की कथा वस्तु धार्मिक है। रास गेय है, तथा इसमें तीर्थ एवं यात्रा के महात्म्य का सुन्दर काव्यात्मक वर्णन है। इस काल में जैन रासों की विषय वस्तु में पर्याप्त परिवर्तन हो गया था। मन्दिर, शिल्पकला, तथा उसकी प्रतिष्ठा कराने वाले धनपति श्रावक का यश गान वर्णन करना भी "रास" में प्रारम्भ हो गया था। रेवंतगिरि रास की ही भांति १३वीं शताब्दी मे हमें कवि राम द्वारा सं० १२८६ में लिखा हुआ एक आबू रास[2] मिलता है, जिसमें आबू के प्रसिद्ध तीर्थ व संघयात्रा आदि के वर्णन हैं। रेवंतगिरि रास में भी सोरठ देश के प्राचीन मन्दिरों तथा प्रसिद्ध पौरवाडकुल या प्राग्वाट् कुल का वर्णन है।[3] वस्तुपाल और तेजपाल इसी कुल के दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष हैं, जिन पर १५वीं शताब्दी तक रचनाएं उपलब्ध होती हैं। अतः रास की ऐतिहासिकता के अनेक अंतरंग तथा बहिरंग प्रमाण मिलते हैं। राव खंगार, जयसिंह देव एवं गुजरात के प्रसिद्ध राजा कुमारपाल का भी प्रस्तुत रास में उल्लेख है, जो इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तित्व हैं।[4] यक्ष और यक्षिणियों के अनेक चित्र जैनियों के प्राचीन तीर्थंकरों की मूर्तियों के साथ आज भी बने मिलते हैं। यक्ष वर्णन रेवंतगिरि रास में भी मिलता हैं।[5] इसके अतिरिक्त अनेक बहिरंग प्रमाण रास की ऐतिहासिकता सिद्ध करते हैं उनमें से कुछ टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:—

(१) तेजपाल गिरिनार तले तेजलपुर निय नामि[6]

तेजपाल ने वहां अपनी मां के नाम पर आसाराय विहार त्रिणदेवालय उग्रसेनगढ़ में बनवाया।

(२) सुवर्ण रेखा नदी के किनारे पंचम हरिदामोदर का वैष्णव मन्दिर भी उस समय था यह उल्लेख कवि ने प्रस्तुत रास में किया है। इसके अतिरिक्त कुमारपाल श्रीमाली कुल संभव ने अम्ब को सौराष्ट्र का दण्ड नायक बनाकर सं० १२२० में गिरनार के सोपान बनवाये थे:—

---

१—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग; श्री नामवरसिंह, पृ० २१८।
२—देखिए:—राजस्थानी; वर्ष ३ अङ्क १; श्री अगरचंद नाहटा का लेख "आबूरास"
३—देखिए:—प्राग्वाट्-इतिहास (भूमिका भाग) : लेखक अगरचंद नाहटा।
४—रेवंतगिरि रास; डॉ० हरिवल्लभ भायाणी; पृ० २, पद ६।
५—वही, पृ० ८, पद ८।
६—आपणा कवियो; श्री के० का० शास्त्री, पृ० ११८।

"कुमारपाल भूपाल जिरा सासरा मंडगु

.... .... ....

अंवश्रो सिरे सिरिमाल कुल संभवो, पाल सुविसाल तिरिग नठिय
अंतरे धवल पुरणु पर व भराविय [1]

जयसिंह देव ने सौराष्ट्र पर खंगार का वधकर अधिकार करने के बाद साजण मन्त्री को वहाँ का दण्डनायक नियुक्त कर सं० ११८५ में गिरनार ऊपर नेमिनाथ का मन्दिर बनाया:—

"सिरि जयसिंह देउ पवरु पुहवीसरु, हरणवि तिरिग राउ पंगारउ
अहिणवु नेमिजिरिणद, तिरिग भवणु कराविउ।

इनके अतिरिक्त मालव के मावड शाह का स्वर्णिम नगाड़खाना बनाने का उल्लेख, कश्मीर के अजित एवं रतन नामक भाइयों का वहां संघ लेकर आना, तथा वस्तुपाल तेजपाल का ऋषभदेव मन्दिर आदि बनवाना आदि घटनाएं रास के ऐतिहासिक महत्व को स्पष्ट करती हैं। [2]

प्रस्तुत रचना ४ कड़वकों में विभक्त हैं। कड़वक कोई काव्य–रूप या स्वतंत्र छंद नहीं होकर सर्ग विभाजन का सूचक शब्द है। अपभ्रंश के संधि काव्यों में अनेक कड़वक मिलते हैं। साहित्य दर्पणकार ने अपभ्रंश काव्यों में कड़वक सर्गों को कहा है। [3] परन्तु पउम चरिउ, हरिवंश पुराण आदि ग्रन्थों में तो सर्ग संधि कहलाते हैं। प्रायः इन काव्यों में अनेक संधियाँ होती थी और एक-एक संधि में अनेक कड़वक होते थे। दूसरे शब्दों में कई कड़वक मिलकर एक संधि को बनाते थे। अतः संधि को कड़वकों का एक समूह कहा जा सकता है। [4] हेमचंद्र ने कड़वकों का जो विवेचन किया है [5] उसके अनुसार दो कड़वकों के मध्य में वर्णित धत्ता छंद कड़वक की समाप्ति का सूचक है। प्रस्तुत रास के कड़वकों को वर्णन के एक भाग का अन्त और दूसरे नये सर्ग के आरम्भ का संकेत समझा जा सकता है। अर्थात् प्रत्येक कड़वक के अन्त में कथा समाप्त होती है और प्रत्येक कड़वक के बाद कथा प्रारंभ।

---

१–प्रा० गु० का० संग्रह; श्री दलाल, पृ० २।

२–आपणा कवियो; श्री के० का० शास्त्री, पृ० ११८।

३–अपभ्रंश–निबंध अस्मिन सर्गा कुड़वकाभिधाः।

४–कड़वकः समूहात्मकः सन्धि।

५–रेवंतगिरिरासः डॉ० ह० चु० भायाणी सम्पादित, पृ० १–४।
"संध्यादौ कड़वकांते च ध्रुवं स्यादिति ध्रुवा ध्रुवंक घत्ता वा"–हेमचंद्र।

रेवंतगिरि रास चार कड़वकों में विभक्त है। इन कड़वकों में कोई विशेष कथा सूत्र नहीं है, चारों कड़वकों में गिरनार, नेमिनाथ, संघपति, अंबिका, यक्ष तथा मन्दिरों का वर्णन है। वस्तुपाल तेजपाल के संघ द्वारा नेमिनाथ की प्रतिष्ठा का महामहोत्सव होता है। एक विशेष बात यह है कि इस काव्य में प्रत्येक कड़वक में स्वतंत्र वर्णन है जिसका पारस्परिक कोई सम्बन्ध नहीं। इन कड़वकों में जयसिह, कुमारपाल, दण्डनायक, मालव के मावड शाह के वर्णन है तथा कश्मीर के अजित और रत्न नामक भाइयों की संघ यात्रा-वर्णन, दानवीरता, संघ तीर्थों के शिल्प, मूर्ति का पराक्रम तथा चमत्कार पूर्ण घटनाओं का वर्णन है। श्रावक भक्तों को धर्मशील बनने का आग्रह और धर्म प्रचार ही रास का उद्देश्य है।

प्रस्तुत रास की एक प्रति पाटण भण्डार में है जो ताड़ पत्र पर लिखी हुई है। डॉ० हरिवल्लभ भायाणी ने अपना पाठ सम्पादन श्री सी० डी० दलाल के प्राचीन गुजराती काव्यसंग्रह से ही किया है। [1]

रेवंतगिरि रास गीति प्रधान रास है। गेय तत्व नृत्य में सहायक होता है विशेषतया महोत्सव में श्रद्धालु भक्तों के ये रास एक अभूतपूर्व उल्लास की सृष्टि करते थे। धर्म ने हमारे समाज के मनुष्यों में एक जीवन्त विश्वास की सृष्टि की है। इह लोक और परलोक का ज्ञान, अहिंसा और अध्यात्म से प्रेम आस्तिकों की श्रद्धा के ही परिणाम हैं। अतः समाज की इसी विशिष्ट मनोवृत्ति ने ही समय समय पर अनेक साहित्यिक विधाओं और पोपकतत्वों का निर्माण किया है।

रेवंतगिरि रास के वर्णनों में प्रगाढ़ तन्मयता है। कवि की पदावली कांत सुमनोहरा और प्रसाद गुण सम्पन्न है। कृति में सर्वत्र भक्ति रस व्याप्त हैं। श्रद्धा स्निग्ध प्राणियों में शांत रस का प्रवाह फूटा पड़ता है। भाषा समास बहुला है।

प्रारम्भ में ही कवि मंगलाचरण करके आगे बढ़ता है। मंगलाचरण की परम्परा भारतीय प्रबन्ध काव्यों की प्राचीन परम्परा है। कवि ने गिरनार के सौंदर्य के कई मधुर चित्र खींचें है। अनुभूति की सरसता उन्हें और भी मार्मिक बना देती है। कवि गिरनार का संसार यात्रा के साथ रूपक बांधता है:—

जिम जिम चडइ तडि कडणि गिरनार, तिमि तिम ऊडइं जणभवण संसार
जिम जिम सेड जलु अंगि पालाटएं, तिम तिम कलिमलु सयलु ओहट्टए [2]

---

१—रेवंतगिरि रास; डॉ० ह० व० भायाणी सम्पादित, पृ० १–४।
२—वही ग्रन्थ; द्वितीय कड़वक।

वहाँ की शीतल वायु तीनों ताप हरण करने वाली है:—

जिम जिम वायइ वाउं तहि निज्झर सीयलु
तिम तिम भव दाहो तक्खणि तुट्टइ निच्चलु [1]

पक्षियों के मधुर वर्णन, काकली की मिठास, मयूर का कलरव, भ्रमरों का गुंजार और निर्झरों का नाद सारे प्रान्त को झंकृत कर देता है। वर्णन की ध्वन्यात्मकता और काव्यात्मकता द्रष्टव्य है :—

"कोयल कलयलो मोर केकारओ सम्मए महुयर (ह) महुर गुंजारवो
.... .... ....
जलद जाल वंवाले नीझरणि रमाउलु रेहइ, उज्जिल सिहरु अलि कज्जल सामलु
वहल वहु धातु रस भेउणी, जत्थ झल हलइ सोवन्न मइ मेउणी
जत्थ देपंति दिवोस ही सुंदरा, गहिरवर गत्थ गंभीर गिरि कंदरा
जाइ कुन्दु विहसन्तो जं कुसुमिहि संकुल दीसइ,
दस दिसि दिवंसो किरि तारा मंडलु [2]

(मेघों के जल समूह से प्रवाहित रमणीय निर्झर अलिकज्जल गिरि श्यामल शिखर की शोभा अनेक धातुओं एवं रसों से युक्त स्वर्णमयी मेदिनी अर्थात् औषधियों से परिपूर्ण वसुन्धरा, और विकसित कुन्द कुसुमों का दल मानों दिशाओं का नक्षत्र मण्डल है) आदि उपमान उत्तम कोटि के तथा कवि की उत्प्रेक्षाएं भी अति नूतन हैं।

समास बहुला अनुप्रासात्मक शैली और सरस पदावली से कवि ने नीरस पत्थरों में भी रस के स्रोत उमड़ाए हैं। निम्नांकित पंक्तियों के प्रकृति वर्णन से जयदेव के गीतों के शब्द-चयन व कोमल कांत पदावली का स्मरण हो आता है:—

"मिलिय नवल वलि दल कुसुम झल हालिया,
ललिय सुर महि लवण चलण तल तालिया
गलिय थल ममल मयरंद जल कोमला,
विउल सिलवट्ट सोहंति तहि संमला [3]

प्रकृति वर्णन में कवि ने नाम परिगणनात्मक रूप को प्रस्तुत किया है। अनेक वनस्पतियों का परिगणन उसकी विशाल शोध दृष्टि एवं बहुज्ञता की परिचायक है और शब्द अनुप्रासात्मक और नादात्मक है। एक ही अक्षर से प्रारम्भ होने वाले अनेक वृक्षों के नामों को तथा कवि की बहुज्ञता को देखिए:—

---

१—वही, पृ० ३, कड़वक २, पद ४।

२—रेवंतगिरि रास; डॉ० हरिवल्लभ भायाणी, पृ० ३।

३—वही, पद ५, पृ० ३।

"अंगुरा अंजरा आंविलीय, अंबाडय अंकुल्लु,
अंवक अंबरु आमलीय, अगरु असोय अहल्लु
करवर करपट करुणतर, करवंदी करवीर,
कुडा कडाह कयंव कड, करव कदलि कंपीर
वेयुल वंजुल वउल वड, वेउल वरण विडंग,
वासंती वीरिणि विरह, वांसियाली वण वंग
सीसम सिंवलि सिर (स) समि, सिंधुवारि सिरखंड
सरल सार साहार सय, सागु सिगु सिण दंड
पल्लव फुल्ल फलुल्ल सिय, रेहइ ताहि वणराइ,
तहि उज्जिल तलि धम्मि यह, उल्लटु अंगि न माय [1]

अनुप्रास, यमक, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अनेक अलंकारों का स्वाभाविक निरूपण हुआ है। कृति में विशेष कर अनुप्रास, रूपक व उत्प्रेक्षाओं की तो घटा ही उमड़ी पड़ती है:—

अनुप्रासः—

(१) निम्मल सामल सिहर भरे
(२) तस सिरि सामिउ सामलउ सोहग सुंदर भार
(३) अंगुरा अंजरा अंवीलीय, अंबाडय अंकुल्लु

उपमा रूपक व उत्प्रेक्षाः—

(१) जिमि जिमि चडइ तडि कडिरिण गिरनारह
तिमि उडइं जरा भवरा संसारह
(२) जाह कुंद विहसन्तो जं कुसुमिहि संकुलु
दीसइ दस दिसि दिवसो किरि तारा मंडलु
(३) जत्थ सिरि नेमि जिरणु अच्छरा अच्छरा
असुर सुर उरग किनरय विज्जाहरा
मउड मरिण किरण पिंजरिय गिरि सेहरा [2]

उल्लेख, वर्णन, क्रम, तथा स्वाभावोक्तिः—

(१) अइरावण गयराय पाय मुद्दा मम टाउक
दिट्ठ गयंदन कुंड विमल निर्झर सम लंकिउ
(२) गयरा गंग जं सयल तित्थ अवयारु भरिणज्जइ

---

१—वही, पृ० २, पद १४—१७।

२—रेवंतगिरि रास : श्री भायाणी, द्वितीय कड़वक।

पेक्खलिवि तहि अंग दुक्ख जल अंजलि दिज्जइ

(३) गन्हगण्ण ए माहि (?) जिम भाणु पव्वय माहि जिम मेरु गिरि
तिहु भुयणे तेम प्रहाण तित्य मौहि रेवंतगिरि

(४) नयण संलूणउं नेमि जिणु [1]

"नयण सलूणउं" प्रयोग कितना उत्कृष्ट है।

और अन्त में कवि ने प्रकृति के उपादानों द्वारा नेमिनाथ का अभिषेक कराया है। नेमिनाथ के रूप वर्णन करने में कवि के काव्य कौशल का परिचय मिलता है। अतिरंजना से एकदम रहित हैं। जैसा स्वाभाविक भाव निष्पन्न हुआ उसको ज्यों का त्यों संजो दिया है।

नीझर (णं) ए चमर ढलंति, मेघाडंवर सिरि धरीय
तित्थह ए सउ रेवंदि सिहासण जइय नेमि जिण [2]

गुजराती विद्वानों ने प्रति पाटन भण्डार में उपलब्ध होने से इसे प्राचीन गुजराती के विकास की कड़ी वताया है! परन्तु यह भी स्पष्ट है कि प्राचीन गुजराती का उत्कर्ष ही प्राचीन राजस्थानी का उत्कर्ष है। अतः इस बात का कोई स्वतन्त्र महत्व नहीं प्रतीत होता। वस्तुतः कृति केवल प्राचीन राजस्थानी की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

छन्द के क्षेत्र में रेवंतगिरि रास का मौलिक योग है। चारों कड़वकों में क्रमशः २०, १०, ११ और २० पद हैं। प्रथम कड़वक के वीसों छन्द दोहे छन्द में वर्णित हैं। दोहा अपभ्रंश और हिन्दी का लाड़ला छन्द है। कवि ने उसे वड़ी ही संभार से निभाया है।[3]

द्वितीय कड़वक में एक प्रकार का मिश्र छन्द है जिनमें पहली दो पंक्तियों का छन्द लक्षणों के आधार पर ठीक नहीं वठता और शेष चार पंक्तियों में "झूलणा" छन्द है जो २० मात्राओं का होता है। [4]

तृतीय कड़वक का छन्द रोला [5] है। यह छन्द ११ कड़ियों का है।

---

१—वही, पृ० ६, पद १८–२०।

२—वही, पृ० ६, पद २०।

३—"परसेसर तित्थेसरहु, पय पंकज पणमेवि,
भणिसु रास रेवंतगिरि, अंविक दिवि सुमरेवि—पद १, कड़वक प्रथम।

४—रेवंतगिरि रास—डॉ० भायाणी—पद ५, कड़वक २।

५—समुद्र विजय शिवदेव पुत्तुजायव कुल मंडणु,
जरासिंध दलमलणु भडमाण विहंडणु।

डॉ० भायाणी ने उसे २२ पंक्तियों में विभक्त किया है। रोला छन्द भी अपभ्रंश परम्परा का प्रमुख छन्द है। चतुतुर्थ कड़वक की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह पूरा कड़वक ही सोरठा छन्द में लिखा गया है। इस छन्द में वर्णित "ए" वर्ण रचना को गीतात्मक बनाता है और इसे हटा लेने पर सोरठा की मात्राएं बराबर ठीक बैठती हैं। कवि का वर्णन चातुर्य इसी छन्द में है।[1]

प्रस्तुत रास की रचना का उद्देश्य सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों के प्रकाश में जीवन में निर्वेद का महत्व तीर्थो और चरित नायकों के आदर्शों की सहायता से स्पष्ट करना है। जीवन निर्माण में यह रास एक आध्यात्मिक सन्देश देता है। इस कृति से तत्कालीन जैन राजाओं की साहित्यिक प्रवृत्ति और धार्मिक प्रवृत्ति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तुत रास की भाषा में सरलता, प्रांजलता और जयदेव की वाणी की भांति प्रसाद और मधुरता है। शब्दों की विकासात्मक प्रवृत्ति तथा भाषा में तद्भव व तत्सम शब्दों की झलक स्पष्ट है। प्रयुक्त राजस्थानी और गुजराती के शब्दों में भी नवीनता का प्रयोग है। सासु, परव, तूसइ, सामिणि, उजिल, कुंवर, पाज, दीसइ, गिरनार, भाय, घरिउ, पालाट, अठाई, सीह दीठु अगुण आदि। कुछ शब्दों का विशेष विश्लेषण देखिए:—

(१) सुमय या सुषम—सुसम से सूमू हो गया।

(२) सुखमय—सुखमयु—सुहयउ—सूहमु—सूमू।

(३) रेवंतगिरि प्रयोग षष्ठी विभक्ति का लगता है। "ए" का रूप संस्कृति "गिरे" से मेल खाता है। गिरि का गिरे बना दिया है। ऐसा भी संभव है कि गिरे सप्तमी विभक्ति का हो।

(४) अविउ, गलियु, कसमीर, झलहलइ, गलइ, रासु, कप्पिउ, जइजइकार, आवइ, घरिउ, दलंतउ, ठामि ठामि आदि स्पष्ट अर्थोवाले शब्द हैं जिनमें अधिकांश रूप सप्तमी के हैं।

(५) कड़वक शब्द की व्युत्पत्ति देखिए:—

(क) कटप्र>कडप्प>कडवक या

(ख) कटप्र>कडप्प>कडाप>कलाप या

(ग) कटप्र>कडप्प>कडंप>कडंव>कदंव>कडवक अतः कटप्र शब्द ही इसका उद्भव लगता है। हेमचन्द्र ने लिखा है "कडप्पा कटप्र

---

१—वही; पृ० ५, पद २, चतुर्थ कड़वक।

शब्द भवोऽप्यस्ति सच कवीनां नाति प्रसिद्ध इति निवद्धम् ।" वे कटप्र शब्द को संस्कृत का वताते हैं । [1]

(६) रली शब्द की व्युत्पत्ति सम्भवतः—रुचि शब्द से हुई होगी। रुचि+ल प्रत्ययः—रुचि ल=रुइलि । रुइलि>रुइल>रली ।

(७) तु शब्द सर्वनाम तु के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

(८) तित्थ मांहि, पव्वय मांहि, प्रयोग सप्तमी के हैं। माहि शब्द मध्ये मज्झे–माझि–माधि–माहि संभव हो सकता है। धरि, जासि आदि रूप तृतीया के हैं।

(९) प्रथम शब्द प्रथ धातु से और अम प्रत्यय लगाकर वना है। प्रथ के हल प्रत्यय लगने से पढामिल्ल तथा प्राकृत पढम–पुढम–पढुम–पुढुम आदि रूप वनते हैं। हेमचन्द्र ने थ का ढ में परिवर्तित हो जाने का ही विधान किया है। [2]

(१०) सट्टाविय, भराविय, आदि रूप भूत कृदंत लगते हैं। ठामु का मूल रूप स्था धातु में है। [3]

निष्कर्षतः रेवंतगिरि रास का काव्य की दृष्टि से अपूर्व महत्व है। वास्तव में संस्कृत साहित्य की दृष्टि से भी हम इस काव्य में उच्च कविता देख सकते हैं। इसमें कुछ शब्द चमत्कृति और कुछ अर्थ चमत्कृति वाली कविता है। यह विद्वान् लेखक श्री शास्त्री का विचार है। [4] इस प्रकार धार्मिक स्थल, धार्मिक विषय तथा आध्यात्मिक सन्देश पूर्ण रचना होते हुए भी इसमें साहित्यिकता और निखरी काव्यात्मकता का उन्मेष है। धर्म इसमें प्रेरणा के रूप में है।

———

१–देशी नाम माला; गाथा १३, श्री हेमचन्द्र ।
२–रेवंतगिरि रास, पृ० १–६ ।
३–वही ।
४–आपणा कवियो; श्री केशवराम काशीराम शास्त्री, पृ० १७१ ।

# नेमिनाथ रास [1]

१३वीं शताव्दी का एक महत्वपूर्ण रास नेमिनाथ रास है। इसके रचयिता श्री सुमतिगणि हैं। यह रास १३वीं शताव्दी की उत्तरार्द्ध का है। इसका रचना काल सं० १२७० है। विजयसेन सूरि के रेवंतगिरि रास के पहले ही इस रास की रचना हुई होगी। क्योंकि रासकर्त्ता सुमतिगणि की अन्य रचनाओं की तुलना में यही कृति पहले रची हुई है, ऐसा प्रतीत होता है। कवि सुमतिगणि का निवासस्थान राजस्थान ही था। वे एक प्रतिभाशाली कवि और यशस्वी टीकाकार थे।

प्रस्तुत रास जैसलमेर की सं० १४३७ की स्वाध्याय पुस्तक में उपलव्ध हुआ। एक और प्रति जैसलमेर के दुर्ग स्थित बड़े भण्डार में है। इन दोनों के आधार पर ही प्रति का पाठ सम्पादन हुआ है। सुमतिगणि जैसे कवि की और भी रचनाएं होगी, जो प्रचार की कमी से लुप्त हो गई प्रतीत होती हैं।

नेमिनाथ पर रचे काव्यों की परम्परा अपभ्रंश से ही मिलती है। अपभ्रंशेतर रचनाओं में तो नेमिनाथ जैसे प्रसिद्ध व्यक्तित्व पर तो सैकड़ों की संख्या में ग्रन्थ रचे गये हैं। कवि ने नेमिनाथ रास में नेमिनाथ के चरित पर प्रकाश डाला है रचना छोटी है कुल मिलाकर ५८ छन्द हैं, पर कवि की काव्य प्रतिभा की परीक्षा इसी से हो जाती है।

नेमिनाथ के ख्यात्तवृत पर आगे विस्तार में प्रकाश डाला जायगा यहां कृति का एक मूल्यांकन ही प्रस्तुत किया जारहा है। नेमिकुमार जैनियों के २३वें तीर्थंकर थे। उनका राजकुमार होना तथा शक्तिशाली, वीर, पराक्रमी होकर भी संसार से वीतरागी हो जाना, तथा विवाह के अवसर पर अभिन्न यौवना राजमती को छोड़कर चल देना बड़ी आश्चर्यजनक घटना है। राजमती भी उन्हीं के चरणों में जाकर दीक्षाग्रहण कर लेती है और अन्त में दोनों महानिर्वाण की प्राप्ति करते हैं। बरातियों के लिए जीवित पशुओं का वध किया जाकर भोज्य

१–हिन्दी अनुशीलन; वर्ष ७, अङ्क १, पृ० ४४–५० "सुमतिगणि कृत नेमिनाथ रास लेख।

वनाना आदि बातों ने उनमें वैराग्य उत्पन्न कर दिया। नेमिनाथ श्रीकृष्ण बलराम के भाई थे तथा यादव कुल में सब से सर्व-शक्तिमान थे।

रास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रचना जन-भाषा में लिखी हुई है जो वर्णनात्मक और गेय तत्व प्रधान है जो सम्भवतः गाने और खेलने के लिए ही रचा गया है।

प्रारम्भ में मंगलाचरण कर कवि ने नेमिकुमार (अरिष्टनेमि) के जन्म का व उनके पिता समुद्रविजय व सौरीपुर की महारानी शिवादेवी का वर्णन किया है।

बाल्यकाल में ही नेमिकुमार असाधारण पराक्रमी थे। खेलते-खेलते ही एक दिन उनका कृष्ण की आयुध शाला में जाकर उनके धनुषों की टंकार की तथा लीला मात्र में ही कृष्ण का शंख बजा दिया। कृष्ण अत्यन्त भयभीत हुए। जिनेश्वर नेमिनाथ का बालय रूप और आयुधशाला का पराक्रम वर्णन दृष्टव्य है:—

"सो सोहाग निहाणु जिणेसरु, रूवरेह जिय मयण सुणीसरु
सुर गिरि कंदरि चंपउ जेम्व, वढ्ढइ नेमि सुहंसुहि तेम्व ॥२१॥

तहि वसंति जाय व कुल कोडिहिं, हंसहि रमहिं कीलहि चडि छोडिहि
सग्गपुरी इन्दुव सव काल गयउ न जाणइ कित्तिउ कालू
नेमि कुमरु अन दियहिं रमंतउ, गउहरि आउहं साल भमंतउ
संखु लेवि लीलइ वाएइ, संखसिह तिहुयण खोमेइ ॥२४॥

तंसुणि पभणई कण्हों किण वायउ संख
भरिणउ जणेण नरिंदा, जिण बलुज असंखु
तो भयभीउ भणइ हरि रामह, भाउ नहिय वासु इह ठावह
लेसइ नेमिकुमरु तह रज्जू हा हा हियइ धसक्कइ अज्जु [1]

विविध रूपों में कवि ने नेमिनाथ की राज्य के प्रति निर्लिप्ति का वर्णन किया है। विषय सुखों के प्रति वे सदा उदासीन रहे।

राम भणइ मन करइ विसाउ, रज्जु न लेसइ तुह कुवि भाउ
इहु संसारु विरत्तु जिणेसरु, मुक्ख सुक्ख कंरिवउ परमेसरु
रज्जु सुक्ख करि मुछु छुवंछइ, घोर नरइ सो निवड़इ निच्छइ
पुणवि मागइ हरि रामह अग्गइ, बंधव गय इह पुहवि समगइ
अतुल परिक्कमु नेमिकुमारु लेसिइ रज्जु न किणइ सहारु

---

१—हिन्दी अनुशीलन; वर्ष ७, अङ्क १, पृ० ४८।

राम जणद्दणु पड़िबोहेइ, कुग्गह कारण रज्जु कु लेइ
मुद्धछु वुद्धिवंतु कुवि होइ ग्रामिउ सुलहि किम्व विसु भक्खेइ (२७–३४)

विविध दृष्टान्तों से कवि ने भापा को सबल व भावपूर्ण वना दिया है। आगे रचनाकार ने नेमिनाथ के विवाह पर प्रकाश डाला है। उग्रसेन की लड़की राजुल को रोती छोड़ नेमिनाथ वीतरागी बन गये। विरहिणी राजुल चिरविरहिणी वन गई। बाड़े में वंधे पशुओं का करूण क्रंदन नेमिनाथ से नहीं सहा गया जो वरातियों के भोज्य के लिए वध किये जाने वाले थे और इस प्रकार द्वार तोरण पर आये नेमिनाथ ने सुन्दरी राजुल के सारे स्वप्नों को प्रभावहीन कर दिया। रूपवती राजुल के सौंदर्य वर्णन में कवि का कौशल दर्शनीय है। अलंकरण की छटा ने स्थल का सौंदर्य और वढ़ा दिया है:—

"हू जाणउ भड़ अच्छइ वाली राइमई वहु गुणिहिं विसाली
उग्गसेण रायं गहि जाइय, रूव सुहाग खाणि विक्काहय
जसु घणु केस कलावु लुलंतउ, नीलु किरण जालुव्व फुरंतउ
दीसइ दीहर नयण सहंती नं निलुप्पल लील हसंति
वयणु कमलु नं छण ससि मंडणु, दिक्खवि भुल्लइ धूआ खंडणु
मणधरू धणहरू मणु मोहेइ, कंचन कलसह लीह न देई
सरल वाहुलय कंत विगज्यय, न चंपय लय गयवणि लजिजउ
जसु सरूवु पतिण उत्तासिय नरइ गइयस कत्य विनासिय
इय विण विणु करिह सा वाल वराविय
नेमिकुमारह देसि (जुपत्थिय) जायव मेलाविय (४१–४५)

सौंदर्य वर्णन पर्याप्त सुघड़ है तथा सौंदर्य के उपमानों में भी मौलिकता है। रूपवती राजमती की जीवन भर की साधना व्यर्थ हो गई, राजमती का सारा शृंगार क्रदन में तिरोहित हो गया। उसकी कांति रुदन में वदल गई पर उसने धैर्य नहीं छोड़ा। ऐसे दिव्य पुरुप मुझ मूर्ख के वल्लभ कैसे हो सकते है ? करुण रस में डूवी हुई राजमती की वाणी वड़ी दयनीय स्थिति की द्योतक है। अन्त में राजमती स्वयं नेमिनाथ के पास गिरनार जाकर दीक्षित हो, कैवल्य पद को प्राप्त करती है:—

"तं निसुणेविणु राय मई, चिंतइ धिगुधिगु एहु संसारू
निच्छय जाणिउ हेव महं न परणइ नेमिकुमारू
जो विहुयण रूपिण करि छड्डियउ, जं वन्तंतु कुरुविकइ खंडिउ
सुर रमणी हवि जो किर दुल्लहु, सो किम्व हुई महु मुद्दिय वल्लहु
पुणरवि चितइ राइमइ जहहउ नेमि कुमारिण मुक्कि

तुइ तमु अज्जवि पय सरणु इहुमणि निच्छउ लोयणु थक्कि
अह जिणवर बारवइ भमंणह, परमन्निण पाराविय संतह
दिण चउपन्नह अंति असोअह, मावस केवलु हुयउ असोयह
सो मुण साहुणि सावय साविय, गुण मणि रोहण जिण मय भाविय
इहु पहुचउ विहु तित्थु पवित्तउ, नाग चरण दंसिणिहि पवित्तउ
रायमई पहु पाय नमेविणु, नेमि पासि पवज्ज लहे विणु
चरम महासई सील समिद्धिय नेमि कुमारह पहिलउं सिद्धिय
नेमि जिणुवि भवियणु पडिवोहिवि, सूरु जेम्व मदि मंडलु सोहिवि
आसाढ द्ंमि सुद्धि मुणीसरु संपत्तउ सिद्धिहि परमेसरु

अन्त में कवि ने भरत वाक्य के रूप में संघ और गुणवंतों के कल्याण की कामना जिणवर और अम्बिका या शासन देवी से विघ्नमुक्त करने की की है:—

सिरि जिणवइ गुरु सीसइ इहु मण हरमासु
नेमिकुमारह रहउ गणि सुमइण रासु
सासण देवी अंवाइ इहु रासु दियंतह
विग्धु हरउ सिग्घु संघह गुणवंतह (५०–५८)

पुष्पिका[1] के रूप में कवि का नाम भी मिल जाता है। रचना की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित है तथा जन-साधारण की भाषा ही है। अपभ्रंश के शब्दों की बहुलता होते हुए भी उसमें जन-भाषा का प्रवाह है। शब्दों में सरलता और प्रभाव प्रवणता है। रचना धूवउ छन्द में है। छन्द के अन्त में एक-एक द्विपदी मिलती है। छंदों में इस छंद की मौलिकता भी स्पष्ट होती है।

इस प्रकार जन-भाषा काव्य का यह रास वात्सल्य, शृंगार, करुण और निर्वेद आदि के सुन्दर स्थल प्रस्तुत करता है। १३वीं शताब्दी के जन-भाषा काव्यों में नेमिनाथ रास का स्थान भाषा और कथात्मक दृष्टि से अपने ही प्रकार का है।

---

१–इति श्री नेमिकुमार रास। पण्डित सुमतिगणि विरचितः ॥ छ ॥

# गय सुकुमाल रास [1]

जैसलमेर के बड़े भण्डार से सं० १४०० में लिखि एक प्रति गय सुकुमाल रास की उपलब्ध होती है। इस प्रति की प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय में विद्यमान है। इसके रचयिता मुनिजगचन्द्र सूरि के शिष्य श्री देल्हण हैं। देल्हण का समय निर्धारित नहीं है, पर क्योंकि जगचन्द्र सूरि का समय सं १३०० है अतः बहुत सम्भव है कि इनका काल भी सन्धिकाल या १३१५ से सं १३२५ के बीच में कहीं अनुमानित किया जा सकता है।

कृति की भाषा को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि यह अपभ्रंश शब्दों की अधिकता लिए है। इसके पूर्व वर्णित रास कृतियों में आने वाले अपभ्रंश आदि के शब्दों के अनुपात में इस कृति में अपभ्रंश के शब्द अधिक हैं। फिर भी लोकभाषा की कृति होने से इसका महत्व स्पष्ट है।

प्रस्तुत रास मुनि गज सुकुमाल पर लिखा एक चरित काव्य है। गज-सुकुमार कृष्ण के एक सहोदर अनुज थे। देवकी को उसके पहले पैदा हुए कृष्ण सहित ७ पुत्रों का सुख न मिल सकने पर उसने कृष्ण को मातृ सुख व शिशु-क्रीड़ा आनन्द का अभाव बताया। कारण नगर में नेमिनाथ के साथ ६ साधु एक ही रूप के थे और वे दो दो की टोली बना कर देवकी के यहां आहार ग्रहण करने को आये। देवकी का मातृत्व उमड़ पड़ा। नेमिनाथ से पूछने पर उसे उन्होने बताया कि ये दसों मुनि उसी के पुत्र हैं जो कंस द्वारा मार डालने पर बच गये थे। देवकी को अब बालक की इच्छा हुई। कृष्ण ने तपस्या करके पता लगाया। देवता ने बताया कि बालक तो इसके और हो सकता है पर यह उसका बाल्य-काल का सुख ही देख सकेगी। युवा होने से पूर्व ही वह दीक्षा ले लेगा। नियत समय पर बालक हो गया क्योंकि वह गज के बच्चे की भांति सुकुमार व सुकोमल था अतः उसका नाम गजसुकुमाल रख दिया गया। मां देवकी ने उसे खूब लाड़-प्यार से पाल कर अपनी मातृ-सुख व वात्सल्य की

---

१—राजस्थान भारती; वर्ष ३, अङ्क २, पृ० ८७ पर गयसुकुमाल रास—'ी अगरचन्द नाहटा का लेख।

अतृप्त-कामना की पूर्ति की। एक दिन नेमिनाथ पुनः द्वारका आये उनकी रसीली वाणी सुनकर गयसुकुमाल को वैराग्य हो गया। मां के बहुत मना करने पर भी हठी बालक न माना। नेमिनाथ ने दीक्षा दे दी। पहले ही दिन उसने उनसे कैवल्य की प्राप्ति का उपाय पूछा। नेमिनाथ ने ईर्ष्या-द्वेष रहित होकर तितिक्षा धारण करना बताया। बालक सुकुमाल श्मशान में जाकर ध्यानस्थ हो गया। इधर उसी का पाणिग्रहण करने के लिए एक सुन्दर लड़की के ब्राह्मण पिता को जब ज्ञात हुआ कि इसने तो दीक्षा लेकर मेरी सुन्दरी लड़की का जीवन ही मिटा दिया है तो उसने चिता के गर्म-गर्म अंगारे लेकर उसके सिर पर डाल दिये। बालक पूरा जल गया पर अब तो उसे भान होगया था कि मैं तो आत्मा हूं जल तो केवल शरीर रहा है। इस तरह साधना व मोक्ष प्राप्ति के लिए बालक ने जीवन उत्सर्ग कर दिया। पापी ब्राह्मण भी कृष्ण को देखते पाप करने से मृत्यु को प्राप्त हुआ। यही इस रास का कथा सार है।

कथा में घटनाओं का वैचित्र्य और कथा सूत्र में कथात्मकता होने से पाठकों का उत्साह एक रस बना रहता है। जैन सूत्रों में भी गज सुकुमाल का जीवन चरित मिलता है। वस्तुतः पूरा रास कवि ने गजसुकुमाल की साधना, तितिक्षा व कैवल्य प्राप्ति में प्रशंसा व चरित वर्णन के रूप में लिखा है।

भाषा की दृष्टि से इस रास को डॉ० हरिवंश कोछड़ ने अपभ्रंश काव्यों में लिया है परन्तु उनकी यह मान्यता संभवतः ठीक नहीं है। कृति की भाषा अपभ्रंश के पूर्ववर्ती रूपों तथा तत्कालीन लोक-भाषा से सम्बन्ध रखती है। भाषा को देखते यह तो कहा जा सकता है कि इस कृति का रचना काल सम्भवतः सं० १३०० के ही आस-पास माना जा सकता है पर कृति का अपभ्रंश तत्कालीन भाषा परिवर्तन काल की उपेक्षा करना है। वास्तव में यह रचना संधिकालीन रचना है। कवि ने यह रचना श्री देवेन्द्र सूरि के कहने से ही लिखी है:—

"सिरि देविंद सूरिदह वयण, खमि उवसमि सहियउ
गयसुकुमाल चरितू सिरि देल्हणि रइयउ—

आगे कवि के काव्यात्मक स्थलों, तथा भाषा का रूप देखने के लिए कुछ स्थलों के उदाहरण दिये जा रहे हैं:—

कृष्ण के राज्य का वर्णन, देवकी का आहार हेतु आये हुए समान रूपा ६ मुनियों को देखकर वात्सल्य का वर्णन इन स्थलों को देखिये:—

"नयरिहि रज्जु करेई तहि कहु नरिंदू
नरवइ मंति सणहो जिव सुरगणि इंदू

संख चक्क गय पहरण धारा
कंस नराहिव कय संहारा
जिण चाण उरि मल्लु वियरिउ
जरासिधु वलवंतउ धाडिउ
तासु जणउ वसुदेवो वर रूवनिहाणू
महियलि पयउ पयावो रिउ भड तम भाणू
जणणिहि देवइ गुण संपुन्निय
नावइ सुरलोयह उत्तिन्निय
सा निय मंदिर अच्छइ जाम्व
तिन्नि जरि जुयल मुणि आइय ताम्व
सिरि वच्छकिय वच्छे रूवि विक्खाया
चितइ धन्निय नारी जसु जाया (५-६) रा० भा० वर्ष ३ अङ्क २

छहों मुनियों को एक रूप देखकर देवकी को शंका हुई कि मुनि तीन वार कैसे आहार ग्रहण करने आये और इसका परिहार नेमिनाथ ही करते हैं और देवकी के मन में वाल सुख का अभाव विषाद भर देता है:—

"मुनिवर सुंदर लक्खण सहिया, महसुय कंसि कयच्छिं गहिया
वारवइ मुणि विभइ इत्थ्यू, कह वलिवलि मुणि आयउ इत्थू
पूछइ देवइ ता····पभणहि मुनिवर ताम्वा (अम्ह) सम रूव सहोदर
सुलस सरविय कुक्खि धरिया, जुव्वण विसय पिसाइ नडिया
सुमरिउ जिणवर नेमिकुमारू, तसु पय मूलि लयउ वय भारू
···· ···· ····
जाइवि पुच्छिइ नेमिकुमारू, संसउ तोड़इ तिहुयण सारू
पुव्वि छच्च रयण ततं हरिया, विणि कारणि तुह सुय अवहरिया
कंस वि होइ निमित्तू वर करह करेई सुलस सराविय ताम्वा सुरू अल्लइ
देवइ मुणिवरू वंदइ जाम्व हरिस विसाउ धरइ मणि ताम्व
सुलस सघन्निय असु धारितहिय, हउं पुण वाल विउइहि दहिय
खिल्लवइ मलहावइ जाम्व, देवइ मन दुम्मण हुइ ताम्व

कवि ने गयसुकुमाल का श्मशान में जाकर कठिन तितिक्षा का वर्णन देखिए:—

"मोह लहागिरि चूरण वज्जू, भवतरूवर उम्मूलण गज्जू
सुमरिवि जिणवरू नेमिकुमारू, गय सुकुमारू लेइ वयभारू
ठिउ का उसग्गि ताम्व जाय वि मसाणो,

बारवइ नयरीए बाहिर उज्जाणे
तंगि सु दिय वरु कुपियउ पेक्खइ तहिरिय जल पज्जालिउ दिक्खइ
अम्ह धुय विनडिय परिणिय जेण, अविनउ तसु फलु करंउ खणेण

कठोर साधना में कैवल्य ज्ञान का उपासक गज श्रावक की भांति कोमल गजसुकुमाल सौमित्र ब्राह्मण के चिता में से उठाकर अंगारे डाल देने से जल कर वहीं भस्म हो गये और निर्वाण को प्राप्त हुए। नायक की यह साधना कवि ने बड़ी ही श्रद्धा से वर्णित की है:—

"तावइ गयसुकुमाल सिरि पालि करेई, दारुण खयर अंगारा सिरि पूरणलेई
उज्झइ मुणिवरु गयसुकुमालू, अहिणउ दिक्खिउ गुणिहि विसालू
विज खर पवण न सुरगिरि हल्लइ, तिव सतु इक्कु न झाणह चल्लइ
अवराहसु नगेणू किर होइ निभिन्नू, सहजिय पुव्व कयाइ हुयइ विचिरचितू
अहिय गइमुणि गयसुकुमालू, निहंक उज्झइ कम्पह जालू
अंतगडिवि उप्पाडिउ नाणू पाविउ सासय सिवनुह ठाणू [1]

रास के अन्त में कवि ने रास लिखने का उद्देश्य स्पष्ट किया है। कवि ने यह चरित प्रधान रास गयसुकुमाल की तितिक्षा प्रधान साधना की प्रशस्ति के रूप में लिखा है। यों रास गाने, मनन करने और आनन्द मग्न होने के लिए ही लिखा गया है:—

एहु रासु सुहडयह जाई, रक्खउ सयलु संघु अंकाई
एहु रासु जो देसी गुणि सी, सो सासय सिव सुक्खइं लहिसी [2]

वस्तुतः सन्धि कालीन रासों में भाषा की दृष्टि से ऐसी कृतियाँ विशेष महत्व की हो सकती हैं। इनमें अपभ्रंश कालीन प्रयोग और लोक-भाषाओं के बीच की संक्रांति की स्थिति स्पष्ट होती है। छन्द अलंकार आदि की दृष्टि से कृति का महत्व गौण है।

३४ छन्दों का यह रास निर्वेदांत है कवि ने गयसुकुमाल के चरित वर्णन करने में ही सारा चरित-गीत लिखा है। इस प्रकार यहां तक आते आते यह स्पष्ट हो जाता है कि रास के रचना उद्देश्य में केवल नृत्य-गान उल्लास क्रीड़ा आदि न रह कर उनमें कथा तत्व का पूर्णतया समावेश हो गया था। इस तरह रास संज्ञक रचनाओं की वस्तु स्थिति में कालान्तर में बड़ा परिवर्तन होगया।

---

१—देखिए—राजस्थान भारती; वर्ष ३, अङ्क २, पद (२९—३२) पृ० १।
२—वही, पद ३४।

# कच्छूली रास

१४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक रचना कच्छूली रास मिलती है।[1] रचना का लेखक अज्ञात है। रचना काल, रचनाकार और रास के रचना स्थल की सम्भाव्य कल्पना रास की कुछ अन्तिम पंक्तियों से की जा सकती है। श्री मोहनलाल देसाई ने भी इसका रचनाकार श्री प्रज्ञातिलक सूरि माना है[2] पर यह बात ठीक नही जँचती है। रास की अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं:—

"साग्रीसइ अषाडि लखमरण मयधर साहुसूग्रो
छयरणी नयर मभ्कारि ग्रारिठवरणउ भीमि किग्रो
कमल सूरि नियपाटि सई हथि प्रज्ञासूरिठवीग्रो
पमीउ पभावीउ ग्रीवु ग्ररणसरिण ग्रप्पा सूधुकीग्रो
परिण पहुत्तउ सुरकोइ गरणहरू गंगाजल विमलो
तासु सीसु चिरकालु प्रतपउ प्रज्ञातिलक सूरे
जिरण सासरिण नहचंदु सुह गुरू भवीयहं कल्पतरो
ता जागे जयवंत उमाहो जां जगि ऊगइ सहसकरो
तेर त्रिसठइ रासु कोरिंटावडि निम्पिउ
जिरण हरि दित सुरणंत मरण वंछिय सवि पूरवउ"

इस तथ्य से प्रज्ञातिलक सूरि का नाम, रास का रचना संवत् १३६३ तथा रचना स्थल कोरिंटवड स्पष्ट होता है। देसाई जी की बात का परिहार इस बात से हो जाता है कि यदि कृति का कर्त्ता स्वयं प्रज्ञातिलक होता तो वह स्वयं अपने लिए प्रशंसात्मक वर्णन कैसे कर सकता था। श्री के० का० शास्त्री का मत है कि ऐसा लगता है कि किसि अज्ञात लेखक ने यह रास रचा होगा।[3] पर शास्त्री जी का आधार भी इस दृष्टि से किसी निश्चित परिणाम पर नही पहुँचता। अस्तु रचना के स्थलों को उसके चरित नायक तथा ऐतिहासिक

---

१–प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह; श्री चिमनलाल दलाल, पृ० ६२६।

२–जैन गुर्जर कवियो; भाग १, पृ० ८।

३–आपणा कवियो; श्री के० का० शास्त्री, पृ० २०७।

वातावरण पूर्ण उल्लास एवं प्रशंसात्मक वर्णनों को देखकर यह कहा जा सकता है कि या तो इसकी रचना किसी संघाधिप द्वारा हुई या प्रज्ञातिलक सूरि के ही किसी अंतरंग शिष्य द्वारा हुई होगी।

कच्छूली रास एक ऐतिहासिक गीति रचना है जिसमें आबू का अचलेश्वर जैन मन्दिर, चंदावली, कोरिंटवड आदि जैन तीर्थों का वर्णन है। साथ ही आबू के अनलकुंड व परमारों का वर्णन भी कवि ने किया है। रास में कोई कथा विशेष नहीं। कच्छूली ग्राम में उत्पन्न श्री उदयसिंह सूरि का पराक्रम और शौर्य वर्णन है। धार्मिक दृष्टि से कच्छूली ग्राम का महत्व स्पष्ट किया गया है। साथ ही कवि ने संघ वर्णन किया है जिसमें प्रज्ञातिलक सूरि प्रमुख पात्र हैं। उदयसिंह ने संघ निकाला, संघ चन्द्रावली गया, वहीं साजण के पुत्र कमल सूरि की दीक्षा हुई और तब कोरिंटवड़ स्थान पर प्रज्ञातिलक के किसी शिष्य विशेष ने रास रचना की होगी।

कथा की दृष्टि से इस कृति का कोई विशेष महत्व नहीं, कथा में कोई नवीनता भी नहीं मिलती पर भाषा-शैली और छन्दों की दृष्टि से रचना महत्वपूर्ण है। कवि ने मंगलाचरण से ही प्रारम्भ किया है। आचार विचार और अनियमित जीवन यापन करने वाले कवियों के लिए कुछ अच्छे सिखावन कवि ने दिए हैं:—

"केवल भुलंति न जिणु भणइ नारिहि सिद्धि सजणि
उदयसूरि पमणाउ पलीउ जय तल राय अयाणि
केवल मुकति म भ्रांति करे नारि जंति ध्रुव सिद्धि
तिस मय सिद्धा वज्जि जीय लीइं आहार विसुद्धि"[1]

छन्दों की दृष्टि से इस कृति में बाहुल्य मिलता है। यों दोहा चौपाई आदि छन्द तो मिलते ही हैं पर झूलणा छन्द विशेष शिल्प के साथ वर्णित हुआ है। यह छन्द २० मात्राओं के चरणों का मिलता है। इसमें दो कड़ियां होती हैं जिसमें एक दोहा की व दूसरी कोई द्विपदी होती है। छन्दों के क्षेत्र में इसका मौलिक योग दिखाई पड़ता है। बीच-बीच में जो बार बार पदों का आवर्त्तन होता है वह छन्द को कलात्मक बनाता है। इससे इस रास में गेयता-जन्य-प्रवृत्ति स्पष्ट होती है। एक उदाहरण देखिए:—

"सियंवर तउ हिव रहिजे जे गुरु सिद्धिहिं चंडो
विसहरु आवतु परिखलि जे लंपीउ ए लंपीउ दंडु पयंडो

१–प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह; श्री दलाल, पृ० ५६–६२।

तउ गुरि मुहंता मिल्हि करि होइ गरहु पणेण
धाईउ लीधउ चंचु पडे गिलीउ ए गिलीउ ए गिलीउ छाल भुयंगो
पाउ पिल्लिवि संमुहीय डर डरंतु थीउ वाधो
जोवणहार सवि पल मलीय हीयडई ए हीयडई ए हीयडइ पड़ीउ दाधो
.... .... ....
तउ गुरि मूकीउ रय हरणु कीधउ सीहु करालो
वाघह जंता दूरि भीउ हरिसीउ ए हरिसीउ ए हरिसीउ नयरू सवालो [1]

झूलणा छन्द इससे पूर्व सोम मूर्ति रचित जिनेश्वर सूरि विवाह वर्णन रास में भी मिलता है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। एक और छन्द जो सं० १२४१ के भरतेश्वर बाहुवली में मिलता है, इसमें वर्णित हुआ है। इस छन्द में १६+१६+१३ मात्राओं का प्रयोग है जिसका निर्वाह पहले शालिभद्र सूरि ने किया है। [2] सम्भवतः इस छन्द का वर्णन कवि ने परम्परा निर्वाह के लिए ही किया हो। छन्द है:—

सिरि भद्देसर सूरिहि वंसो, वीजी साह वंनिसु रासो, धमीय रोलु निवारीउ
नग्रकुंड संभम परमार, राजु करइं तहि छे सविवार, आबू गिरिवर तहिं पवरो
जणमण जयणह कम्पण मूली, कच्छूली किरि लंक विलासी सर प्रववि मणोहरीय [3]

श्री लालचन्द गांधी ने इस छन्द को रास छन्द की संज्ञा दी है जो सम्भवतः रास रचनाओं के लिए एक छन्द विशेष हो गया था। [4] श्री के० का० शास्त्री ने इस छन्द को मिश्र छन्द कहा है तथा इसमें १६+१६+१३+ और १६+१६+१३ की द्विपदियां बताई हैं। [5] इन छन्दों के अतिरिक्त दोहा, चौपाई छन्द भी मिलते हैं। रास महोत्सव के लिए लिखा गया है अतः गेयता उसमें विद्यमान है।

भाषा के सम्बन्ध में रचना का महत्व साधारण है। लोक-भाषा के प्रवाह में कवि ने "बूंब" जैसे शब्द का प्रयोग किया है—

"हुइ कमालीउ कालमुहो लोकिहि ये लोकिहि ये लोकिहि वाइय बूंब [6]

---

१—प्राचीन गु० का० सं०; पृ० ६१।
२—भरतेश्वर-बाहुवली-रास; श्री ला० भ० गांधी, पृ० २।
३—प्राचीन गु० का० सं०, श्री दलाल, पृ० ५६।
४—भरतेश्वर-बाहुवली-रास; पृ० २।
५—आपणा कवियो; श्री के० का० शास्त्री, पृ० १५६–१६०।
६—प्रा० गु० का० सं०; श्री दलाल, पृ० ६१।

राजस्थानी में बोलचाल में आज भी बूंब शब्द मिलता है जो सम्भवतः जोर से चीखने के लिए प्रयुक्त होता है। यह भी सम्भव है कि यह शब्द विदेशी हो।

नये शब्दों में—कमठ, वाद्य, वरमाल, पमणउ, पासजिण, अनलकुंड चिन्तामणि, हिमगिरि, धवलउ, आंविल, उपवास, मूकीउ, दीजी, मुकति, आंति, चिरकाल, विमल, आदि अनेक शब्द मिलते हैं। अतः इन शब्दों से भाषा में नवीन शब्दों के ग्रहण की शक्ति स्पष्ट होती है।

१४वीं शताब्दी के इन्हीं काव्यों की परम्परा में इसी प्रकार की कथा वस्तु के दो विस्तृत रास काव्य मिलते हैं। इन काव्यों में भी संघ वर्णन है तथा दानवीर संघपतियों की दानशीलता का वर्णन है। इन दोनों कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन संक्षेप में किया जायगा। काव्य प्रवाह भाषा और छन्दों की दृष्टि से ये दोनों रास महत्वपूर्ण प्रबन्ध हैं।

१—पेथड़ रास [१]—सं० १३६३—मंडलिक

२—समरा रास [२]—सं० १३७१—अंबदेव

ये दोनों कृतियां प्रकाशित हैं तथा इनमें पेथड और समरसिंह की दानवीरता, पराक्रम, और शौर्य, तीर्थोद्धार तथा संघ का वर्णन है। दोनों रासों में से पहले का लेखक और समय अनिश्चित-सा है पर प्राप्त वहिरंग प्रमाणों के आधार पर इसे सं० १३६३ की रचना मानी जा सकती है। पेथड रास की पूर्णता पर श्री के० का० शास्त्री ने शंका प्रकट की है [३] यों रचना की पुष्पिका "इति श्री प्राग्वाट्वंश मौक्ति काव्य पेथड रास समाप्तः" को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रचना अपूर्ण नहीं है। रचना का लक्ष्य भी पूरा हो गया है। अतः रचना को अपूर्ण कहना असंदिग्ध ही लगता है। वस्तुतः शास्त्री जी का अनुमान बहुत ठीक नहीं है। कवि मंडलिक पर भी मत वैभिन्न्य है, पर मंडलिक का प्रमाण रास में मिल जाता है।

कृति का ऐतिहासिक दृष्टि से भी बड़ा महत्व है। कई ऐतिहासिक पुरुषों यथा कर्णवेल, खंगार, आदि का वर्णन भी मिलता है। श्री शास्त्री इसके कर्त्ता के विषय में लिखते हैं कि या तो इस काव्य का रचयिता ही खंगार है या वह नहीं है, तो मंडलिक का पिता खंगार होगा और वह वृद्ध होगा

---

१—प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह; श्री दलाल एपेन्डिक्स १०, पृ० २६।

२—वही, पृ० २७।

३—आपणा कवियो; श्री के० का० शास्त्री, पृ० १६७।

अतः मंडलिक हो इसका कर्त्ता रहा होगा। खंगार की मृत्यु का प्रमाण तो वि० सं० १३१६ में ही मिलता है।[1]

जो भी हो, कृति के रचनाकार और रचना काल दोनों की स्थितियां अस्पष्ट हैं। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर मंडलिक को ही इसका रचनाकार कहा जा सकता है व इसका काल सं० १३६० माना जा सकता है।

पेथड वस्तुपाल और तेजपाल की भांति यशस्वी था। समरसिंह का यश भी पेथड से कम नहीं था। पेथड और समर दोनों दानवीर पुरुषों ने संघ निकाला था। पेथड रास में कई स्थानों पर क्रीड़ा, ताल, लुकुटा रास, नृत्य, संगीत, गान आदि के पद मिलते हैं। कुछ काव्यात्मक सरस स्थल द्दष्टव्य हैं:—

"देवालई वालीय नयणि विसालीय दितीय ताली रंगि फिरंती हरिस भरे
तहि पेला नाचइ पल वहुयत वेला वाला भोल लड्डा रसि रमई[2]

कामिणी धामिणि धवल दयंती गायंती गुण जिणवरह
ग्रति अमाहु जात्र समाहउ वरीयल कंनि सुणंतीह य
ते चउरा रूडा तउवां ताडी, नवां नवेरा दसइं गेहण गण सघण
ते घणा घणेरा सम विसमेरा संखि न दीसई असंखि पुण—

शब्द चयन की सुगठितता, सरलता तथा गीतिमयता के साथ-साथ कवि ने रास क्रीड़ा का महत्व स्पष्ट किया है:—

"रास रमेवउ जिन भुवणि ताल मेव ठवियाउ
संघ तलायन रोपिउ ए समागिरि विमगिरि बेवि"

अनेक आलंकारिक सूक्तियाँ भो रास में मिल जाती हैं:—

(१) लाछितणाउ जड गरव करेइ लीजइ राउल छलह धरेई
(२) मणूय जनम हवं सफल करीजइ जिविय यौवन लाहउ लीजर
(३) एक चित सवि समाण जाण
(४) जिम कंचरा कस वट्टीय पामिउ बहुगुण रेह
(५) धण कण रयण भंडार ते सवि अछगिय असार

साथ ही नारियो के नृत्य, कामिनियो के आल्हादकारी हास, तथा रास क्रीड़ा के साथ-साथ गिरिनार और सुवर्ण रेखा नदी के काव्यात्मक वर्णन अनूठे हैं।[3]

---

१—गुजरात—राजस्थान, पृ० ३०८।

२—प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह; पृ० २६ एपेन्डिक्स १०।

३—वही पृ०, २७ छंद ४६।

इसी प्रकार श्री अम्बदेव सूरि कृत समरा रास के काव्यात्मक स्थल भी उल्लेखनीय हैं। रास रचना का उद्देश्य, गाने, क्रीड़ा करने और नृत्य हेतु पठन बताया है जो—"एहु रासु जो पढइ, गुणइ, नाचिउ जिग हरि देइ

श्रवणि सुणइ सो वयठऊ ए तीरथ ए तीरथ ए तीरथ जात्र फलु लेई

समरसिंह ने मुसलमान सुलतान को प्रसन्न कर संघ निकाला। बादशाह सुल्तान ने संघ की बड़ी सहायता की। समरसिंह ने ऐसे साम्प्रदायिक समय में शत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार कर आदिनाथ की प्रतिमा स्थापित की। और जूनागढ़ प्रभास पट्टण आदि अनेक ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा कर समरसिंह पाटण लौट आये। रास कर्त्ता ने अनेक ऐतिहासिक घटनाओं के सम्बन्ध का रास में उल्लेख किया है। कवि ने पातशाह, सुल्तान भीम, अलपखान, मीर मलिक अहिदर मलिक आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों से रास का सम्बन्ध स्पष्ट किया है। रास पर विस्तृत अध्ययन अन्यत्र प्रस्तुत किया गया है।

रचना का वस्तु वर्णन भाषा में विभक्त है। मुनि जिनविजय जी ने इनकी संख्या १२ ही बताई है और श्री दलाल ने भी इसे द्वादशी भाषा ही कहा है। [१] इन भाषों का विशेष अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि सम्भवतः कवि ने विभाजन छन्दों के आधार पर किया हो, क्योंकि हर भाषा में छन्द वैविध्य है। भाषा समाप्त होते ही छन्द परिवर्तन हो जाता है इस दृष्टि से पाठ का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इसे १२ भाषों के स्थान पर १३ भाषों में विभक्त होना चाहिए। क्योंकि द्वादशी भाषा की ६ कड़ियाँ एक ही छन्द में चलती है जिसको के० का० शास्त्री ने त्रिपदी या अज्ञात छन्द कहा है। [२] पर उसके बाद छन्द बदल जाता है, शेष भाषा दोहों में रची गई है जिसमें "ए" स्वर के साथ पदों का तीन बार आवर्त्तन मिलता है। अतः इस अवशेष भाग को १३वीं भाषा कहा जा सकता है। भाषा शब्द "कडवक" की भांति कथा विभाजन का सूचक है अतः यह सर्ग परिवर्तन सूचक शब्द है।

कवि ने अलाउद्दीन और मीर अलप खां की प्रशंसा सात खंडों तक की है कवि की वर्णन की अलंकारिता दृष्टव्य है:—

"तहि अच्छइ भूपतिहि भुवण सतखंड पसत्यो,
विश्वकर्म विज्ञान करिउ घोइउ
अमिय सरोवर सहसलिंगु इकु धरणिहि कुंडलु,

---

१–प्रा० गु० का० सं०; श्री दलाल, पृ० २९।

२–आपणा कवियो; श्री के० का० शास्त्री, पृ० २१९।

कित्ति थंभु किरि अवर देसि मागइ आवं डलु

.... .... ....

पात साहि सुरताण भीवु तहि राजु करेइ,
अलपखानु हींदूअह लोय घणु मानजु देई
मीरि मलिकि मानियइ समरु समरथु, पभणी-जइ,
पर उवयारिय माहि लीह जसु पहिलिय दीजई

असंख्य सेना के साथ समरसिंह चलते हैं। हाथी, घोड़े, यात्री, सैनिक फलही, और स्थान-स्थान पर उत्सव आनंद सबका अनुभूतिपूर्ण वर्णन है घोड़ों ऊंटों व सेना वर्णन में कवि का कौशल दर्शनीय है:—

"वजिय संख असंख, नादि काहल दुड़ दड़िया
घोड़े चडइ सल्लार, सार राउत सीगडिया
तउ देवालय जोयि, वेगि घाघरि जु झमक्कइ
सम विसम नवि गणइ, कोइ नवि वारिउ थक्कइ

.... .... ....

सिजवाला थर धड़हड़इ वाहिणि बहु वेगे
धरणि धड़क्कइ रज्जु उयए नवि सूझवि मग्गे
हय हीसइ आरसइ करह वेगि वहइ वहल्ल
सादकिया थाहरइ, अवरु नवि देइ बुल्ल

रात्रि के दीपकों का तारागणों से साम्य कितना स्पष्ट है:—

"निसि दीवी झलहलहि जेम ऊगिउ तारायणु
पावल पाउ न पामियए वेगि वहइ सुखासणु

प्रकृति वर्णन, भाषा की सरलता, काव्यमयता, कवि की तन्मयता तथा अलंकारों की योजना निम्नांकित पदों से स्पष्ट हो जाती है:—

(१) हिव पुण नवीयज वात जिणि दीहडइ दोहिलए
खत्तिय खग्गु न लिंति साहसि यह साहसुगलए
(२) तसु गुण करइ उदोउ जिम अंधारइ फटिक मणि
(३) सारणि अमिय तणीय जिणी वहावी मरूमंडलिहि
(४) तसु पय कमल मरालुलउ ए कक्क सूरि मुनि राउत
ध्यान धनुष जिणि भंजियउ ए मयण भल्ल भडिवाउत
(५) धम्म धोरिय धुरि धवल दुइ जुत्तया, कुंकुम पिंजरि कामधेनु पुत्तया
इन्दु जिमि जयरथि चडिउ संचारए, सूह वसिरि सालि धानु निहालए
(६) रितु अवतरिउ तहि जिवंसंतो सुरहि कुसुम परिमल पूरंतो

समरह वाजिय विजय ढक्क, सागु सेलु सल्लइ सच्छाया
केसुय कुडय कयंब निकाया—

(७) माणिके मोतिए चउकु सुर पूरइ, रतन मइ वेहि सोवन जवारा
अशोक वृक्ष अनु आमू पल्लव दलिहि, रितुपते रतियले तोरण माला
देवकाया मिलिय धवल मंगल दियइ किनर गायहि जगत गुरो [1]
लगत मुहुतर सुरगुरो सावए पत्रीठ करई सिध सूरि गुरो

उक्त उद्धरण से कृति का काव्य कौशल तथा भाषा में तत्सम शब्दों का समावेश स्पष्ट हो जाता है।

भाषा में विदेशी शब्दों के अनेक उदाहरण इसी कृति में मिल जाते हैं:—

(१) सल्लार—घोड़े चडइ सल्लार सार राउत सोगंडिया
(२) पानपानु—मेटिउं ये तउ पानपानु
(३) अहिदारमलिक—अहिदर ए मलिक-आएस दीन्ह ले श्रीमुखि आपणए
(४) मीर मलिक—मीर मलिक मनियइ समरू समरथ
(५) पातसाहि, अलपखान, दुनिय, हज

हिन्दुअ, अडदासि—(१) "पातसाहि सुरताण भीवु तहि राजु करेइ
अलपखान हीदुअहु लोय घणु मान जुदेइ
(२) भइली ए दुनिय निरास हज भागीय हीदुअ तणीए
(३) सामिए ए निसुणि अडदासि [2]

छन्दों के क्षेत्र में पेथड़ और समरा दोनों रासों का बहुत ही महत्व है। इन दोनों रासों ने भाषा और छन्दों में मौलिकता तथा वैविध्य के सूचक अनेक प्रयोग किए हैं उनका क्रमशः अध्ययन इस प्रकार है:—

पेथड रास में छंदों का वैविध्य द्रष्टव्य है। एक तो लोक-भाषा और दूसरे छन्दों के बदलते क्रम ने काव्य प्रवाह को बढ़ाया है। इस कृति में "चालू रोला दोहा चौपाई और चौपाया तो है ही, नये छंदों में सवैये जूनी गुजराती कविता में सर्व प्रथम प्रयुक्त हुए हैं। गुजराती कविता कहने का कारण यह है कि जयदेव के गीत गोविन्द के पूर्व प्रयुक्त सवैयों में तो देशी पद्धति थी ही परन्तु इस रास में सवैया में विविधता लाने का प्रयत्न है। इसमें चालू माप के पदों में कुछ

---

१—समरारास; प्रा० गु० का० संग्रह; पृ० २४७।

२—समरा रास; पृ० २४५।

मात्राएं अधिक दी हैं और कुछ मात्रा बढ़ाये हुए छंदो में त्रिभंगी छंद की भांति यति-अनुप्रास जैसी पद्धति प्रस्तुत की है। [१]

त्रिभंगी छंद में ३२ मात्राएं होती है। यह छंद सम होता है आदि में जगण (।।।) वर्जित है। १०, ८, ८, ६ पर यति और अन्त में गुरु वर्ण का होना इसके शास्त्रीय लक्षण माने जाते है।

उदाहरणार्थ—धाम्मीय निसुणउ लोय मज्झि संघतणउ समाहउ भवीअणउ
प्राणूंअ दीजइ भत्तिजत्ति भवीया लहइ लाहइ धण कणउ
पेलिसि रुलीयइं रंगि रास हवं नवरस, नवरंग नवीय परे
सुणि सामहणी संघतणी जो करइं निरंतर धरोहि धरे

एक विशेष शब्द लढण इस रास में मिलता है। जिस तरह कड़वक शब्द कहीं-कहीं ठवणि कहलाता है। कच्छूली रास में जिस प्रकार वस्त शब्द का उल्लेख है, उसी प्रकार कवि ने इस पद्धति को लढण कहा है।

ए कार वाला पद लढण के पश्चात जो आता है वह सोरठा है और उसी के साथ ४२ वी कड़ी में दोहा परिलक्षित होता है पर उत्तरार्द्ध में उसी पंक्ति में बार-बार पुनः आवृत्ति मिलती है। इस छंद के बाद देशी सवैया का प्रयोग है। ये चार प्रयोग अत्यन्त ही विशिष्ट हैं:—

"वाय वद्धामणउं अतिहि सोहामणु रिसह भूअणि रलीआमणं ए
मविजन कलस कंचण मय मंडिचले ए
दुक्ख जलंजलि देयंति कुसुमंजले
धुणंति दीण रीण जीण उतारंति
जल लवण नम्हण करंति सामी सुगंध जले

कपूरी पूरि पूरीय तिणि कीयलि मृग नामि मड़ा त्रिजग गुरू
गुण निलउ देवाधिदेव जोउ वेलवउ सेवत्री पाडल वहुल
कुसुम परमल विपुल पूजहे ।। वाय वद्धामणु ।।

इसके अतिरिक्त गीत गोविन्द की २७ मात्राओं की देशी सवैया पद्धति में दो छंद मिलते हैं। इन सवैयों का प्रयोग पहले गीत गोविन्द में ही मिलता है:—

"राजल कंत! तहि नाचिनए सहिलड़ीय ललागीय गिरिनारे
राजलिवर हलिआमुणउ सामलउ संसारो ।। तहि नाचिनए ।।

---

१—आपणा कवियो; श्री शास्त्री, पृ० २०४।

अंग परवालि सुगयंदमइए जल पहरीय धोति प्रवीत
इन्द्र महोत्सव आयंमी तहि बयठलिवहु धणवंत ।। तहि नाचिनए सहि० ।।

और इसके पश्चात कवि ने रास के अन्त में देशी पद्धति में दोहा का वर्णन किया है वह भी अपने ही प्रकार का है जिसकी तुक योजना में भी एक वैचित्र्य है:—

अंविकि आस मणोहर पूरी अवलोईय जगन्नाथ
सांज पूजन जुहारीय वलीयउ पेथ जन्म सुकी याय ।।
तहि ना सहल्ल ए हली या गई गिरिनारि
सोमनाथ चंद पह वंदयर देखीउ वलीउ जाम

दिउ पीयाणं विव मन रहिसउ मंडलिक भणइ ईम ।। तहि ना० ।।
दिउ पीयाणवेगि तहि हरीयाला सूडा रे सूरवाहे संपत्त मनीला सूडारे

समर रास में भी छंदों के मौलिक प्रयोग हैं। कवि ने दोहा रोला द्विपदी, सोरठा आदि छंदों में रास रचा है। छठी व ७ वीं भापा में चौपाई तथा ५ कड़ियाँ रोला की हैं। ८ वीं ९ वीं में क्रमशः १० कड़ियाँ द्विपदी की तथा ९ कड़ियों का एक झूलणा छंद है, जिसमें अत्यानुप्रास का काव्य चमत्कार है जिसमें उसकी गेयता स्पष्ट होती है और यह छंद प्रथम वार प्रयुक्त हुआ है। १० वीं भापा में दोहा और ११ वीं में कवि के नये प्रयोग हैं। प्रारम्भिक कड़ियों में १६, १६ मात्रात्राओं का एक चरण है और फिर १३ मात्राओं की एक अर्द्धाली। १२ वीं १३ वीं भापा में त्रिपदी नामक अज्ञात छंद है। इनमें दोहे के साथ "ए" का प्रयोग व आवर्त्तन तीन वार मिलता है। इस प्रकार दोनों कृतियाँ छंदों की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

डॉ० हरिवंश कोछड़ ने अपने ग्रन्थ अपभ्रंश साहित्य में इन कृतियों को स्फुट साहित्य कह कर छोड़ दिया है और इन रासों को अपभ्रंश की ही कृतियाँ मानी है पर उक्त विवेचन के आधार पर इस धारणा का परिहार हो जाता है। ऐसी कृतियों को अपभ्रंश को कहना प्राप्त तत्कालीन लगभग सभी रचनाओं के शिल्प, भापा, शैली, काव्य, इतिहास, कथा वस्तु तथा इतिहास के तत्वों की उपेक्षा करना है। वस्तुतः दोनों रास अपने में साहित्यिकता लिए हैं।

---

# मयणरेहा रास[1]

हिन्दी जैन साहित्य मे जैन चरित नायको की ही भाति जैन साध्वियो और आदर्श नारियो (सतियो) पर लिखी गई अनेक रचनाएं उपलब्ध होती है। मयणरेहा रास जैन आदर्श राजपुत्री मदनरेखा की जीवन कथा है। प्रस्तुत रास ५ ठवणि मे पूरा हुआ है। सतियों के जीवन चरित वर्णन की परम्परा भी अब प्राकृत और अपभ्रंश काल से ही मिलती है। १३वी से १५वी शताब्दी में रास और चतुष्पदिकाओ के रूप मे अनेक कथा-काव्य मिलते हैं। पूर्वोल्लिखित चन्दनबाला रास की भांति मयणरेहा रास भी सती मदनरेखा के सतीत्व, नारीत्व और पतिव्रत्य जीवन की मार्मिक और करुण कहानी है।[2] प्रस्तुत रास जिनप्रभ सूरि की परम्परा-संग्रह–पुस्तिका सं० १४२५ से प्राप्त हुई है। रचना की प्रति अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में सुरक्षित है।

कृति के रचनाकार का नाम कही नही मिलता है। रास की अन्तिम पंक्ति में दो बार रयणु शब्द का प्रयोग हुआ है:—

सयलह रयणह वयर रयणु जिव भूलु न जाय
तिम जिम सासणि सीलु रयणु कवि कहण न माए

अतः बहुत सम्भव है कि यह रयणु ही रचनाकार हो, पर फिर भी स्थिति असंदिग्ध नहीं कहीं जा सकती।

१४वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध का यह खंड-काव्य काव्य की दृष्टि से, एवं भाषा प्रवाह और कथा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस रचना का

---

१–देखिए:–हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ६, अङ्क १–४ पृ० ९६–१०३ पर सतियों के दो रास–शीर्षक लेख।

२–विस्तृत विवेचन के लिए देखिए–महासती मदनरेखा–जैन महासती मंडल भाग १, पृ० १ से २१ तथा सती मदनरेखा : प्रकाशक श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल, रतलाम सम्पादक श्री हुक्मीचन्द महाराज, सन् १९५०, पृ० १–२८८।

प्रारम्भिक अंश प्रति का मध्यवर्ती पत्र प्राप्त नहीं होने से उपलब्ध नहीं होता। प्रारम्भ के ५ छंद नहीं मिलते और ६ठे छंद से ही रचना प्रारम्भ होती है।

मयणरेहा सुदर्शनपुर के राजा मणिरथ के भाई युगवाहु की रानी थी। मणिरथ ने उसके असाधारण सौन्दर्य पर आसक्त हो उससे प्रेम का प्रस्ताव रखा। सती ने उसकी मांग ठुकरा दी। वसन्त क्रीड़ा के वहाने एक बार युगवाहु सदम्पति उपवन में गया। मणिरथ ने धोखे से वहां पहुँच कर उसकी आत्म-हत्या कर दी। मयणरेहा जिनधर्म को प्रेम करती थी। उसके पुत्र का नाम चन्द्रकुमार था। पति की हत्या के समय वह अंतस्सत्वा थी। उसी स्थिति में वह वन में निकल पड़ी। इधर मणिरथ को भी सांप ने काट लिया और वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। पुत्र प्राप्ति होने पर मयणरेखा नदी में स्नानार्थ गई तो एक हाथी ने उसे उछाल दिया और एक विद्याधर ने उसकी रक्षा की तथा उसके साथ प्रणय का घृणित प्रस्ताव रक्खा। इधर सती के सद्य उत्पन्न शिशु को एक पद्मरथ नामक राजा ले गया और वड़े होने पर वही नेमिराजा राजा हुआ। चन्द्रयश भी सुदर्शनपुर का राजा वनाया गया। सती मयणरेखा ने इधर दीक्षा लेकर विद्याधर से अपने शील सतीत्व की रक्षा की और उसे कैवल्य-ज्ञान की प्राप्ति हुई। अन्त में उसके दोनों पुत्रों ने भी अपनी साध्वी मां सुव्रता (मयण-रेखा) से ज्ञान प्राप्ति कर दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार सती मदनरेखा ने अपने शील की रक्षा की।

कवि को इस करुण कृति की रचना में अनेक स्थलों में काव्यात्मक वर्णन करने का अवसर मिला है। रचना में अनेक मार्मिक स्थल हैं। प्रारम्भ में ही कवि ने मयणरेहा के सौन्दर्य का सुगठित वर्णन किया है।

रइ रूवह लीला दवदंती, रायमए जिम नेहु करंती
समकितु अविचलु हियइ धरंती जिण गणहर पय पउम नमंती
चन्द्रज से कुमर सोहंती, गभइ दीह सा वहुगुणवंती
अह जालंतरि ईसि हसंती, उरि एकावलि हारु वहंती— (६–८)

उसके इस प्रकार के सौन्दर्य पर मणिरथ रीझ गया उसने अपना दुष्प्रस्ताव मयणरेहा से रखा। कवि ने उन दोनों के उत्तर-प्रत्युत्तरों को वड़े ही चातुर्य से वर्णित किया है। वीच में कवि की उपदेशात्मक सूक्तियाँ वड़ी अनूठी हैं:—

जं नवि वेय पुराण सुणीजइ, जं जिय पामरि लोइ हसीजइ
तंपि नरेसर मंडिउ कज्जू पेखउ मयण महा भड रज्जू

कुलि कम लोहिम बुद्धि करंतउ नियगुरण वल्ली अंगि दहंतउ
हा हारव तिहुयणि पावंतउ मणि रहु मयणा मंदिरिपत्तउ

.... .... ....

तामह ए मणिरहो राउ, मयणि महाभडि गंजिउ ए
वुल्लइ ए वयणु विन्नाणु, जेण जणंगणि लाजिय ए
सोलह ए सोवन रेख वुल्लए मयणा निम्मलीय
नरवर ए कवणु विचारु, निय कुल खंपणि मनिरलीय
सुरगिरि ए मिल्हइ ठांउ जइवि सुरालउ महिरुल ए
तिहुयणु एक्क मेलेइ, तोय न मयणा मनु चल ए (१०–२)

और इसके पश्चात् कवि मधुऋतु के वर्णन में डूब जाता है। प्रकृति के उपादानों का परिगणन कवि ने कुशलता से किया है। मधुऋतु क्या आई, मानों मयणरेखा की बसन्त श्री ही सदा के लिए लुट गई। बसन्त क्रीड़ा के लिए युगवाहु और मणिरथ जाते हैं और काम-लोलुप मणिरथ नंगी तलवार लेकर वहाँ पहुँचता है वासन्ती वातावरण को किस प्रकार वह वीभत्स बना देता है। मीठी-मीठी बातों में अपने भाई को उलझा कर उसका धोखे से वध करना बड़ा ही दुर्दमनीय करुण प्रसंग है। राज्य श्री व प्रकृति वर्णन द्रष्टव्य है। अनुप्रासात्मकता व प्रकृति का नाम परिगणनात्मक रूप देखिए:—

मउरी अंब कयंब जेव जंबीरी मोहइ
कयलीय लवलीय ललिय वेलु मालइ मणु मोहइ
चंदण चंपइ चारु चित्त चोरह दीसंता
मरुवक करुणी कुडय कुंद किंसुय विहसंता
कोइल पंचमु सरु करए भमरउ झणकारइ
पाउल परिमलु महमहए मलयानिल्लु चल्लइ
मयण सराखणु करइ कज्जु विरहिणि मणु कंपइ
अवतरिय सिरि वसंत राय मणिरहु इव जंपइ

युगवाहु और मयणरेहा की केलि क्रीड़ा और रास आनन्द मणिरथ से नही देखा गया। मीठी-मीठी वाणी बोल कर कृत्रिम सहानुभूति दिखाता हुआ वह वहाँ आया और मयणरेखा को प्राप्त करने के लालच से पैर छूते हुए भाई के सिर पर तलवार मार दी। अंतस्सत्वा मदनरेखा दीन होकर भटकने लगी पर अपने चरित्र व सतीत्व की पूर्ण रक्षा करने में उसने कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। स्वामी की मृत्यु पर रुदन करती हुई मयणरेहा को स्थिति बड़ी करुणाजनक हो गई और सती को सताने वाले दुर्मति मणिरथ को भी सांप ने काट लिया:—

जमजीहा सम खग्गु लेउ वहु कोवि जलंतउ
माया वंचिउ सयल लोउ केलीहरि पहुतउ
कुमए न सुंदरु पइं कियउ वणवासि वसंतइं
महिमंडलि वइरि गणिहि निसि दिवसु भमंतइ
इव जंपंता नर वरान्ह सो पणमइ पाय
खग्गु सहोयरहं, सिरि मिल्हइ धाय

.... .... ....

तक्खणि धायउ लोउ हहारवु जगि ऊछलिउ
सामी पेखिउ घाउ मयणा नयनंसुय ढलिय
हुयउ सुराजइ अंतु तोरण ऊभीय वयर हरे
इय जाणे विनग्गु लोइ नखइ मूकउ धवल हरे
कुसुमहो भोगहं रेसि लितउ भोगिहि सोगहिउ
तक्खणि नरइ पडेर, पाव महाभरि जो भरिउ
जिणि करि मयण हरेसि नखइ हुंति मनि रलिय
तिणि करि डसियउ सापि दैवहं दुरमति दोहिलीय (ठवणि-३।७ ४।२)

रचना ५ ठवणि में पूरी हो जाती है। भाषा सरल और आलंकारिक है। करुण रस के स्थल स्थान-स्थान पर मिल जाते हैं। रचना की समाप्ति निर्वेद से की गई है। कृति में चौपाई और रास छंद प्रमुखता से मिलता है। भाषा की सरलता, उसकी तत्समता तथा प्रवाहात्मकता के लिए एक उद्धरण दृष्टव्य है:—

करिकरि विस वेयाल, कालि नवकारि हणंती
जउ परिसंती मयणरेह, तउ सरवरि पत्ती
वण फलि सरजलि गमिउं, दिवस निसि पुत्रु जणेई
केली हरि मिल्हेवि, कुमरु सिरि न्हाणु करेई
जल करि नलिणी पत्तु, जेम गयणियलि उलालइ
धरनि वडंती वीजु, जेम, विज्जाहरु झल्लइ
सुंदरि जणि न खार राव मणिपहु विज्जाहरु
नंदीसर वरि अम्ह ताउ मणि चूलु मुणीसरु

.... .... ....

जिण हरु पूत्र करेवि जाम मुणि पाय नमेवि
देसण निसुणिय खयर राय मयणा खामेई

.... .... ....

कुमरह सयलह जिणह वयणि पडिबोह करंती
केवल नाणु धरेवि मयण सा सिद्धि पहूंती–(ठवणि ५;३-५)

वस्तुतः १४वी शताब्दो में गाषा की तत्समता के स्वरूप इस कृति मे देखे जा सकते है। अपभ्रंश के शब्द भी कहीं-कही देखने को मिलते है। कृति इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। १४वी शताब्दी में इसी प्रकार के अन्य अनेक रास मिलते हैं उदाहरणार्थ महावीर रास (१३०७) गयसुकुमाल रास, वारव्रत रास (१३३८) सप्तक्षेत्रीय रास, जिनपद्मसूरि-पट्टाभिपेक रास, श्रावकविधि रास आदि। परन्तु ये रचनाएं काव्य की दृष्टि से साधारण ही है, अधिक महत्वपूर्ण नही है।

१४वीं शताब्दी के वाद १५वी शताब्दी में रास संज्ञक अनेक कृतियाँ उपलब्ध होती है। वास्तव में १५वी शताब्दी का रास साहित्य वड़ा सम्पन्न है।

———

# श्री जिनपद्मसूरि पट्टाभिषेक रास [1]

दीक्षाभिषेक या पट्टाभिषेक एक ही अर्थ के सूचक हैं। १४वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हमने सोममूर्ति के जिनेश्वरसूरि विवाह वर्णन रास पर विचार किया है। ठीक उसी प्रकार का रास सं० १३८८ का सारमूर्ति द्वारा लिखित जिनपद्मसूरि-पट्टाभिषेक रास है। लक्ष्य उद्देश्य तथा मुख्य प्रवृत्तियों की दृष्टि से यह कृति सोममूर्ति की रचना से पर्याप्त साम्य रखती है, परन्तु भाषा और रस की दृष्टि से इसका स्वतन्त्र महत्व है। १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की रचना होने से यह रचना महत्वपूर्ण है। इस रचना की प्रति श्री अगरचंद नाहटा के संग्रह श्री अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है। श्री देसाई ने कृति के आदि-अन्त एवं समय का उल्लेख किया है। कृति ऐतिहासिक है। इसकी ऐतिहासिकता पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। [2] इस प्रकार यह रास ऐसा गीत है, जो जन-साधारण की भाषा में लिखा गया है। जैन गुरुओं और मुनियों ने समय-समय पर जो धर्म प्रभावना की, राजाओं महाराजाओं और सम्राटों पर अपने धर्म की धाक बैठाई और समाज के लिए अनेक धार्मिक अधिकार प्राप्त किए, उनका उल्लेख इन गीतों में पद पद पर मिलते हैं। विशेष ध्यान देने योग्य वे उल्लेख हैं, जिनमें मुसलमानी बादशाहों पर प्रभाव पड़ने की बात कही गई है। [3]

प्रस्तुत रास के नायक गुरु श्री जिनचंद्र सूरि ने सुलतान कुतुबुद्दीन के चित्त को प्रसन्न कर लिया था। सुलतान ने भी हाथी, ग्राम, घोड़े, धनादि देकर सूरीश्वर का सम्मान करना चाहा, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। सुलतान ने उनकी बड़ी भक्ति की और फरमान निकाला तथा "वसति" निर्माण कराई जिसका रास में स्पष्ट उल्लेख है:—

---

१—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह : श्री अगरचन्द भंवरलाल नाहटा, पृ० २१।

२—वही ग्रन्थ; प्रस्तावना, पृ० १६।

३—वही ग्रन्थ; प्रस्तावना : डॉ० हीरालाल जैन लिखित, पृ० १६।

४—वही।

कुतुबद्दीन सुलतान राउ रंजिउस मणोहरु
जगि पयउव जिणचंदसूरि सूरिहिं सिर सेहरु [1]

इसी प्रकार कवि सारमूर्ति के जिनपद्मसूरि भी ऐतिहासिक तथ्यों से मम्बन्ध रखते है। ये जिन कुशल सूरि से, जिनका पुराना नाम तरुणप्रभ है, और जो षड़ावश्यक बालावबोध के कर्त्ता रहे हैं, सम्बन्धित हैं। इन्हीं का नाम जिनपद्म था। प्रस्तुत गीति-रास में धर्म की नीरस सैद्धान्तिकता ही नहीं है, पर ऐतिहासिक प्रामाणिकता तथा काव्यात्मकता है। धर्म की प्रेरणा से काव्य की भाषा-भाव और शैली और प्रभावशाली हो गई है। कुछ काव्यात्मक स्थलों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं। कवि ने रास को भाव-भक्ति मे गाने के लिए लिखा है:—

इहु पय ठवणह रासु भाव भगति ने जर दियहि
ताहि होइ सिववास सारमुत्ति मुणि इम भणइ

आध्यात्मिक विवाह का साहित्य में महत्व स्पष्ट है। आगे जाकर आध्यात्मिक विवाह की इन जैन घटनाओं का प्रभाव सम्भवतः कबीर की साहित्य साधना पर पड़ा हो। कबीर के साहित्य में भी आध्यात्मिक विवाह का महत्व पूर्णतया स्पष्ट होता है। इस अवसर पर रासकर्त्ता ने अभिषेक पर हुई अनेक क्रीड़ाओं का वर्णन किया है। श्रद्धालु श्रावकगण संघ बना कर प्रतिष्ठा में शामिल होते हैं। स्थान-स्थान पर कल्लोल और रास महोत्सव होते हैं और नारियाँ श्रद्धा मे झूम-झूम कर नृत्य करती है। कवि ने इस छोटे से गीत में गेयता को प्राधान्य देते हुए रचना की श्रावकों के उल्लास प्रधान जीवन के सम्बन्ध में दी गई कवि की कुछ अनुभूतियां इस प्रकार है, जो भाषा और भाव की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है:—

उदयउ तसु पट्ट मयल कला संपत्तु मयंकू
सूरि मउड चूडावइंसु जिणकुशल मुणिंदु
महि मण्डल विहान्तु खुपरि आयउ देराउरि
तत्थ विहिय वय गहण मान पय ठवण विविहंपरि (५)

.... .... ....

कुंकुवत्तिय पाठ ठवण उमदिसि संघ हरेसु
मयल संघ मिलि आवियउ, वछरि करइ पवेसु

.... .... ....

आदि जिणेसर वर भुवणि, ठविय नन्दि सुविमाल
धय पडाग तोरण कलिय, चउदिसि वंदुरवाल
सिरि तरुणप्पह सूरिवरो, मरसइ कंठाभरणु

1—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, पृ० १४।

सुगुरु वयणि पट्टहि ठविउ, पदमसूरिति मुणिरयणु
जुगपहाणु जिणपदमसूरे, नामु ठविउ सुपवित्त
आणंदिय सुर नररमणि, जय जयकार करंति

संघ वर्णन और नारियों का उल्लास, रास तथा नृत्य-गीत मंगलाचार आदि का वर्णन देखिए:—

मिलिउ दसदिसि मिलिउ दसदिसि संघ अपार
देराउरि वर नयरि तुर, सद्दि गज्जंति अंबरु
नच्चंतिय वर रमणि ठामि, ठामि पिक्खणय सुन्दरु
पय ठवणु छवि जुगवरह, विहसिउ मग्गणलेउ
जय जय सद्दु समुच्छलिउ, तिहु अणि हुयउ पमोउ

.... .... ....

तिहुअणि जय जयकारु, पूरिउ महिमलु तूरखे
धणु वरिसइ वसुधार, नट नारिय अइविविह परे

.... .... ....

वर वत्था भरणेण, पूरिय मग्गण दीण जण
धवलइ भुवणु जसेण, सुपरि साहु हरिपालु जिइम
नाचइ अवलीय वाल, पंच सबद वाजइ सुपुरे
घरिघरि मंगलाचार, घरि घरि गूडिय ऊभविय
उदयउ कलि अकलंकु, पाट तिलकु जिणकुशल सूरि
जिण सासणि मायंडू, जयवत्तउ जिण पदम सूरे

.... .... ....

जिम ताराअणि चंदु, सहसनयण उत्तम सुरह
चिंतामणि रयणाह, तिम सुहगुरु गुरुयउ गुणह
नवरस देसणवाणि, सवंणजलि जे नर पियहि
मणुय जम्मु संसारि, सहलउ किउ इत्थु कलितिहि
जाम गयण ससि सूर धरणि, जाम थिर मेरु गिरि
विहि संघह संजनु ताम, जयउ जिणपदम सूरे

इस प्रकार उक्त उद्धरणों से कृति के आध्यात्म विवाह का महत्व समझा जा सकता है। काव्य अधिक सुन्दर नहीं, पर भाषा की सरलता व तत्समता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार का सं० १३८९ में लिखित कवि धर्मकलश का जिनकुशल सूरि पट्टाभिषेक रास मिलता है। यह कृति भी इसी तरह गेय है, तथा वस्तु-शिल्प, और वर्णन-पद्धति आदि में दोनों का पर्याप्त साम्य है। उसका विषय भी पट्टाभिषेक ही है। दोनों रचनाएं ऐतिहासिक हैं तथा १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का प्रतिनिधित्व करती हैं।

———

# कुमारपाल रास [1]

१५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विरचित रास रचनाओं में एक प्रसिद्ध चना देवप्रभ विरचित कुमारपाल रास है। इस का सम्पादन डा० भोगीलाल ाडेसरा ने किया था और मुनिजिनविजय ने इस रचना को प्रकाशित किया। [2] स्तुत रचना एक ऐतिहासिक काव्य है जिसका प्रमुख विषय राजा कुमारपाल ः वैभव, राज्य उदारता, प्रदर्शन तथा संघ वर्णन है। प्रस्तुत रास की अन्तिम ड़ी में कवि देवप्रभगणि का नाम मिलता है। बहिर्साक्ष्यों में भी देवप्रभगणि ा नाम मिल जाता है। पाटण के संघवी मुहल्ले के जैन ज्ञान भंडार की ं० १४३५ में लिखी हुई पार्श्वनाथ चरित्र की प्रशस्ति में सोमतिलक सूरि के शेष्य मंडल में देवप्रभगणि का नाम मिलता है। [3] काव्य की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि इसकी नकल सं० १५५८ के चैत्र बुध ३ शुक्रवार को की गई। यह भी स्पष्ट होता है कि कुलमंडन सूरि जो मुग्धाववोध औक्तिक के लेखक है, देवप्रभ के समकालीन थे। क्योंकि मुग्धाववोध औक्तिक का रचनाकाल सं० १४५० है अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि इस रास की रचना १५वीं शताब्दी के प्रथम दशक या द्वितीय दशक में हुई होगी।

पूरी रचना एक सरस काव्य है। कवि के पद लालित्य और काव्य प्रवाह में कहीं भी शैथिल्य नहीं है। ४३ कड़ियो में पूरी रचना समाप्त हुई है। रचना की काव्यात्मकता उल्लेखनीय है। कवि ने काव्य का प्रारम्भ ही महावीर, गौतम स्वामी, सरस्वती, कपर्दी यक्ष अम्बिका देवी आदि की विनय तथा नमस्कार द्वारा किया है।

कुमारपाल अजातशत्रु बन कर रहे। उनके राज्य का प्रभाव तपोवन की भांति था। कुमारपाल की असाधारण घोषणा मे मनुष्यो ने तो क्या पशु-पक्षियों तक ने अपनी पारस्परिक स्वभाव शत्रुता छोड़कर सर्वत्र अहिंसा का

---

१–भारती विद्या; सं० मुनि जिनविजय, भाग २ अङ्क ३; सं० १९९८ पृष्ठ ३१३–३२४।

२–वही।

३–वही पृष्ठ ३१३।

साम्राज्य स्थापित किया। पशुओं में बकरे, भेड़, खरगोश, हिरन, भैंसे, बारह-सींगा, सूअर, चीते आदि को मरवाना बन्द कर दिया। यहां तक कि जूं और खटमल भी मारना पाप समझा गया, हिरणियों के समूह सुखपूर्वक केलि करने लगे। पिंजरे के तोता मैना पक्षी सुख से रहने लगे। पक्षियों में भी चर्चा रहती कि आजकल पानी की मछलियों का भी अहेर बन्द है। कुमारपाल के राज्य की तुलना विहारी के "जगतु तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ" से हो सकती थी। उसके राज्य में सांप कोओं और यहां तक कि कुत्तों को भी कोई नहीं मारता था। कवि ने बड़ी सरसता से इस प्रकार के चित्र उतारे हैं:—

पहिलउ धरीइ धजपताका गिरि मेरु समाणा,
कुमर विहारह करउ भगति सवि मंडलि कराणा
सोवंन थंभे पूतली ए मई मयगल दीठा,
संभलि कुमर नरिंद राय हेम सूरि बूझावइ
आहेडउ वारिउ सयलदेसि राय धम्मकरावइ,
अरिट्ठ नेमि जिम कुमर पालि डांगरउ दिवारिउ
छालि बोकड़ करइ वात गाडरि वधावई,
ससला नाचइ हलिय भरे अजरामर हूआ
लहिया डहिया करइं आलि पारेवह सहीआ,
मइसा अनइ हरिण रोझ सूयर अनइ संवर
चीवा कुमर नरिंद राजि रंगि नाचइं तीतर,
जूअ न माकुण लीक कोइ कहवि न मारइ,
हरिणा हरिणी करइं केलि सुपि हेमसूरि वारइ
लावां लवइं पंजरथियां सुपि अच्छइं भूतलि,
सूईडां नवि पंजरइ थियां पुण नाचइं सीतलि
कावरि अनइ होल भणह सांमलि तू सारइ,
पाणी माहि जि मच्छली ए लोधानवि मारइ
सारमरी सरि हांस लवइ मोरडीय वधावइं,
अक्लई हांजे कुमर पाल अम्ह मरण न आवई
थाग सप अनइ मुणह थाउ कोइ नवि छालइ
न मरउं कुंअर नरिंद राजि साखि होयडउं माचइ (४–६)

ऐसा था कुमार पाल का राज्य। जिस शिकार से दशरथ को पुत्र वियोग में मरना पड़ा, उसे कुमारपाल ने बन्द करवा दिया। जिस द्यूत क्रीड़ा से नल को सब कुछ हार जाना पड़ा, कुमारपाल के राज्य में ऐसा जुआ हेय समझा गया। जिस मद्य के कारण समस्त यादवकुल विनाश को प्राप्त होगया उसे

लोग कुमारपाल के राज्य में स्पर्श करना भी पाप समझने लगे। मांस भक्षण से जिस प्रकार सुदास और श्रेणिक नामक राजाओं को दुख मिला, उसका कुमारपाल ने दृढ़ निषेध किया। गणिका गमन घोर पाप था। वैश्याएं सती स्त्रियों की भांति बन गईं और जिन पूजन करने लगी। चोरों का उपद्रव सम्पूर्ण देश में कहीं भी नहीं था। पानी नगर में तीन बार वितरण होता। विविध प्रासादों तथा विहारों से राजा ने अनहिलवाड़ की शोभा में अपूर्व वृद्धि की। कवि ने इस वर्णन को अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। काव्यगत सरसता, शब्द चयन और वर्णन की चमत्कारिता उल्लेखनीय है। उक्ति का अनूठापन काव्य की सरसता में और अधिक वृद्धि कर देता है:—

पारधि जीवन पोसीय ए बहु पात्रह जोगु
पारधि खेलत दसरतह हूउ पुत्र वियोगु
कुमर नरसेर नियरज्जि आहेडउ वारइं
जलचर थलचर, खचरजीव इम कोइ न मारइं

.... .... ....

जूअ वसणि हूउ नल नरिंद दमयंति वियोगु
अडविभमंता वार बरिस पांडव मनि सोगु
देपी दूपण जूअ तणउं नवि पेलइं सारि,
जूआरि नवि जूय रमइं, नवि बोलइं मारि
मंसवसणि सोदासराय.. पामिउ दुहसेणीय,
दीठी नरगह तणीय भूमि नखइ पुण सेणिय
आमिष भोयण तणइ दंडि बतीस विहार,
राय करावइ कुमर पाल जगि तिहूअण सार
दूपण मदिरापान तणइ जायव कुल नासो,
किरिउ दीवायणि दुट्ठ देवि बारवइ विणासो
राया देसइं नीच सवे हिव मदिरा मल्हइं,
मतवाला नवि मधु करइं मूंमली पेलइं
गणिका गमणु निवारइं ए नरवइ निय राजि,
छंडवि वेशावसण लोग लागसवि काजि
वेशा कीधी माइ सरिस तइं कुमरड राय
तां पण पूजइं जिणह मुत्ति वंदइ गुरुप्राय
वेशावसणिइ गमइ अरथ जो पुरिस अहन्नउ,
पाछइ झूरइ मनह माहि सिम वणीय कयन्नउ (११–१७)

नगर वर्णन और संघ वर्णन में कवि अपनी सानी नहीं रखता। भवनों

की निर्माण-कला उस समय अपनी उत्कृष्टता को प्राप्त थी। विविध वाद्यों से निनादित अनेक राजाओं से सुसज्जित कुमार का संघ ऐश्वर्य अवर्णनीय था। विविध नृत्य-गान, लय-ताल और सूत मागधी गणों का जयजयकार संघ की शोभा बढ़ाने लगे। लोगों को उसके स्वरूप को देखकर भरत या दशार्णभद्र या श्रीकृष्ण, नल या स्वयं इन्द्र है, इस प्रकार का सन्देह होने लगा। अन्त में इस प्रकार संघ धीरे-धीरे शत्रुंजय पहुँचा। यादव पति नेमिनाथ की गिरनार में, वनस्थली में महावीर की, मांगलोर में पार्श्वनाथ की तथा दीव कोडीनार में सोमनाथ तथा पाटण में पार्श्वनाथ की पूजाएं की और संघ पुनः लौटा।

वर्णन की प्रासादिकता, भाषा की सरलता, जन-भाषा होने के कारण उक्ति का अनूठापन तथा विविध लोकोक्तियों का संगुम्फन प्रस्तुत रास का महत्व बढ़ा देते हैं। कुछ वर्णन देखिए:—

नगर वर्णन—

सोवन थंभे पूतली ए आपण जोअंती
निरुवम रुविहि आपणइ ए तिहुयण मोहंती
हीरे माणिक्य चूनडी ए पाथर खंड जडिया
निम्मलकंती विवरासि अइनिउणे घडिया
मंतिय मोकलि देसि देसि बहु संघ मेलावइ,
वामी बहु आसीम दिइं राउ जात चलावइ (२३–२४)

.... .... ....

वाद्य नृत्य गीत वर्णन—

बहुय देसह बहुय देसह संघ मेलेवि
जिण भत्तिहि एगमणि भूमि नाहु सेत्रुंजि वच्चइ
गाइं याइं रुलिय भरी संघ लोक आणंदि नच्चइं
ठामि ठामि वाधाविइं हिव हुइं मंगल चार
अरथींह वरसइं मेह जिम दानि मानि सुवि चार (२७)

.... .... ....

मिलिय सावगतणा लाप, धनि धनद समाणा
मावीय बहती सीनकमलि गुरु गुरुणी आणा
भेरी भूगल ढोल वणा धमधमइं नीसाणा
खेला नाचइं रंग भरे नवनवा सुजाणा
धामिणि तरुणि दिइ रासु करि सग्रह आवो
मधुरी वाणिहि भणइं मानकिवि कंन महावी

बंदी जयजयकार करइं कइ दीहर सादि
गायइ गायण सत्त मरे कवि किनर सादि (२८–२९)

अनुप्रास और सन्देह अलंकारों का विविध सुन्दर चित्र खींचा गया है मनुष्यों को कुमारपाल के इस रूप को देखकर भ्रम उत्पन्न हो जाता है कवि ने इसी भ्रम का दृश्य प्रस्तुत किया है:—

चालीय गयघड माल्हंती, ए भारती मद वारि
खोणी खणंता तुरय लाप करहा सइं च्यारि
राउत पायक राजलोक अनइ मागणहार
संख विवज्जिय मिलिय लोक कोइ जाणइ सार
कि अह चालिउ भरत राउ ? कि सगर नरिंदो,
राया संपइ दमन भट्टी कि कन्ह गोविंदो ?
कि वा दीसइ नल नरिंदु कि देवहराउ,
भ्रंति उपज्जइ जोयता ए नरवइ समुदाउ (३०–३१)

कवि ने पूरा काव्य रोला छन्दों में लिखा है। बीच में, वस्तु छन्द का भी खुलकर प्रयोग किया गया है। वस्तु छंद का एक उदाहरण देखिए:—

मारि वारीय मारि वारीय देस अड्ढारि
देस विदेसह मेलि करि भविय लोक जिणी जत्त कारिय
चऊ दसह चालीसहं राय विहार किय रिद्धि सारिय
मोगड मूकी जेण हिव जगि लीधउ जसवाउ
हूउ न होसिइ चिहु युगे कुमरड सरिसउ राउ (३९)

वस्तुतः पूरी रचना को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह काव्य कुमारपाल का चरित काव्य है जिसमें उसके जीवन की विविध घटनाओं और महत्वपूर्ण कार्यों के सुन्दर चित्र कवि ने उतारे है। काव्य में अहिंसा की विजय सर्वत्र परिलक्षित होती है। कवि ने अहिंसा राज्य का विविध उदाहरणों और स्वाभावगत शत्रुओं के पारस्परिक मेल से स्पष्ट किया है, जो सामाजिक शान्ति का प्रतीक है। सांस्कृतिक दृष्टि से तथा धर्म और इतिहास की दृष्टि से भी प्रस्तुत रचना महत्वपूर्ण है। कवि ने रचना में काशी, कोशल, मगध, कोशाम्बी, वत्सा, मरहठ, मालव, लाट, सोरीपुर, कच्छ, गुजरात, सिंधु, सवालप, काश्मीर कुरु कंति, मांमरि, कन्हउ, जालंधर आदि देशों तथा नगरों के राजाओं का उल्लेख किया है। संघ उत्सव वर्णन जैन समाज का सदैव से ही सांस्कृतिक पर्व रहा है। कवि ने पूर्ण कौशल के साथ इस छोटे से काव्य में उसको सजाया है। रचना की भाषा सरल राजस्थानी है जिस पर अपभ्रंश का यत्र-तत्र प्रभाव

परिलक्षित होता है। मदिरा, पान, जुआ, वेश्यागमन, चोरी आदि सामाजिक कुकृत्यों को भी कवि प्रकाश में लाया है। अतः रास सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस काव्य को कवि ने यद्यपि 'रास' संज्ञा दी है परन्तु रास के नाम पर केवल कालान्तर में परिवर्तित प्रवृत्ति अर्थात् चरित प्रकाशन को छोड़कर अन्य बातें नहीं मिलती हैं। सम्भवतः १५वीं शताब्दी तक रास संज्ञक रचनाओं के शिल्प में चरित काव्यों को ही स्थान दिया जाता होगा। क्योंकि रचना में रास, नृत्य, लय, युगल नृत्य आदि वर्णन नहीं मिलते; न कोई रास छंद ही मिलता है। अतः यह कहा जा सकता है कि रास, ताल, या युगल-नृत्य-वर्णन तथा रास छन्द की कालान्तर में उपेक्षा होना प्रारम्भ हो गई होगी और रास संज्ञा केवल सामान्य चरित आख्यानक काव्यों को ही दे दी जाती होगी। साथ ही उसका नामकरण भी पहले के रास काव्यों की भांति रास ही किया जाता होगा।

रचना के अन्त में कवि ने भरत वाक्यों के रूप में कुमारपाल के इस रास काव्य को युगों युगों तक प्रचारित रहने और अमर होने का आशीर्वाद दिया है। जब तक सुमेरु पर्वत अपने स्थान से न चल पड़े, जब तक सूर्य चंद्र रहें, जब तक शेपनाग भूमि और सागर का भार धारण करता रहे, और जब तक संसार में धर्म विद्यमान है तथा जब तक ध्रुव तारा निश्चलता को प्राप्त है तब तक कुमारपाल राजा का यह रास संसार में आनन्द को प्राप्त करेः—

मेरु ठामह न चलइ जाव, जां चंद दिवायर
सेपुनागु जां धरइ भूमि जां सातइ सायर
धम्मह विसउ जां जगह मही, धीर निश्चल होए
कूमरउ रायहं तणउ रासू तां नंदउ लोए

इस प्रकार इन वाक्यों द्वारा कवि ने रास को निर्वेद निष्पन्न किया है। पूरी कृति सरस तथा छटादार है। भाषा-शैली प्रासादिक है, शब्द चयन प्रभावपूर्ण है और यथार्थ अर्थ प्रदान करता है। कुल मिला कर रचना छोटी होते हुए भी रास संज्ञक रचनाओं के शिल्प में वैविध्य प्रस्तुत करती है। अतः कृति का महत्व और भी बढ़ जाता है!

# कुमारपाल रास [1]

## ( श्री वीतरागाय नमः )

रोला

पढम जिणिदह नमोय पाय अनइ वीरह सामी,
गायेम पमुह जि सूरिराय मुणि सिद्धिहिं गामी,
समरवि सरसति, कवडि जक्ख, वरदेवि अंबाई,
कुमरनरिंदह तणउ रासु पभणउं सुहदाई, ॥ १ ॥

वस्तु

चच्चनन्दन चच्चनन्दन गुणह सम्पन्न
पाहिणिदेवी उवरि धरिउ मोढवंसि उपन्न सुणीइ,
पुष्फवृष्टि सुरवइ करइ ए जास जनमि उवतार,
चंगदेव चिर जीविजिउ जिणसासणि साधार, ॥ २ ॥

बालकालि संजम लियउ गुरु विनय करन्ता,
हेमसूरि गुरु नाम दिन्न जगि जस जयवंता,
मति थोडी गुणतणी रासि हउं कहवि न जामउं,
हेमसूरि गुरुतणउ चरित किम करीअ वक्खाणउ, ॥ ३ ॥

मेधु पडी फरसिय, जाव मसि कीजइ सायर,
अन्त न लाभइ गुणह तणउ जिम चन्द दिवायर,
पहिलउं धरीइ धजपताक गिरि मेरु समाणा,
कुमरविहारह करउ भगति सवि मंडलिकराणा, ॥ ४ ॥

सोवन्नथंभे पूतली ए मइं मयगल दीठा,
सम्भलि कुमरनरिंद राउ जिनपंडित बइठा,
रायहं कुमरनरिंद राय हेमसूरि बूझावइ,
आहेडउ वारिउ, सयलदेसि राय धम्म करावइ, ॥ ५ ॥

अरिट्ठनेमि जिम कुमरपालि डांगरउ दिवारिउ,
छाली बोकड करइ वात, गाडरि वधावइं,

---

[1] विवरण के लिये देखे पृ० १०१ ।

ससला नाचइ रुलियभरे अजराभर हूआ,
लहिया दहिया करइं आलि, पारेवइ नहीआ, ॥ ६ ॥

भइंसा अनइं हरिण रोझ सूयर अनइ संवर,
चीत्रा कुमरनरिंदराजि रंगि नाचइं तीतर,
जूअ न मांकुण लीक कोइ कहवि न मारइ,
हरिणा हरिणी करइ केलि सुपि हेमसूरिवारइ, ॥ ७ ॥

लावां लवइंपंजर थियां सुपि अच्छइं भूतलि,
सूइंडा नवि पंजरइ थियां पुण नाचइं सीतलि,
कावरि अनइं होल भगड, सांभलि तूं मारइ,
पाणी माहि जि मच्छली ए लोधा नवि मारइ, ॥ ८ ॥

सारसरी सरि हांस लवइ मोरडीअ वधावइं,
अक्खई होजे कुमरपाल, अम्हमरण न आवइं,
काग सरप अनइ सुणह घाउ कोइ नवि घालइ,
न मरउं कुमरनरिंद राजि, मखि हीयडउं माचइ, ॥ ९ ॥

कंटेसरि चामंड भणइ, सांभलि तउं माउगि,
छंडि न पडहण तणीय वात अच्छि भडया सावगि,
कंटेसरि आपणइ चित्ति थाकी आलोची,
हेमसूरि सरिसउ किमउ रोसु, जेह न सकउं पहुंची, ॥ १० ॥

वालीनाह करहडा ए वे पडणि पडंता,
छंडि न आमिप तणी आम अच्छि वाकुल पन्ता,
वालीनाह दिउ गाम, लीहावउ वहीए,
सांडइ लाडूइं करउ भगति अनइ ईडरीए ॥ ११ ॥

पारधि जीवन पोसीा ए वहु पावह जोगु,
पारधि खेलत दसरथह हूउ पुत्रवियोगु,
कुमरनरेसर नियरज्जि आहेडउ वारइं,
जलचर थलचर खचर जीव इह कोइ न मारइ ॥ १२ ॥

पट्टणि टालिय पट्टणि टालिय जीवसंधार,
सूअर संवर रोझ तहि फिरइं, जेह जिम मणह भावइं,
दहीआ तीतर सालहिय कच्छ मच्छ नहुमरण आवइं,
छाली वोकड गाडरहं कोइ न घालइं घाउ,
राजु करइं जा मेइणिहि कुमरउ रायहंराउ, ॥ १३ ॥

रोला

जूअ वसरिण हूउ नलनरिद दमयंति विश्रोगु,
अडवि भमंता वार वरिस, पांडव मनि सोगु,
देषी दूषरण जूअतरणउं नवि षेलइं सारि,
जूआरो नवि जूय रमइं, नवि वोलइं मारि ॥ १४ ॥

मंसवसरिण सोदास राय, पामिउ दुहसेरणीय,
दीठी नरगह् तरणीय भूमि नरवइ पुरण सेरिणय,
आमिषभोयरण तरणइ दंडि बत्तीस विहार,
राय करावइ कुमरपाल जगि तिहुअरणसार, ॥ १५ ॥

दूषरण मदिरापान तरणइ जायवकुलनासो,
किरिउं दीवायरिण दुट्ठ देवि बारवइ विरणासो,
रायादेसइं नीच सवे हिव मदिरा मेल्हइं,
मतवाला नवि मधु करइं, भूंमली न षेलइं, ॥ १६ ॥

गरिणका गमरणु निवारिउं ए नरवइ निय राजि,
छंडविवेशावसरण लोग लागा सवि काजि,
वेशा कीधी माइ सरिस तइं कुमरड राय,
ता परण पूजइं जिरणह मुत्ति, वन्दइ गुरू पाय, ॥ ११ ॥

वेशावमरिणइं गमइ अरथ जो पुरिस अहन्नउ,
पाछइ भूरइ मनहमाहि जिम वरणीय कयन्नउ,
जोरह जरणरणी इम भरणइ ए सांभलि वछ वात,
निश्चइं जीवडउ जाइसइ ए जइ पाडिसि पात, ॥ १८ ॥

दीसइ चोर न देसमाहि, जिम सुसमइ रकु,
धरि ऊघाडे बारणइ लोए सूयइ निसंकु,
परस्त्रीदोसिहि रावरणइ ए दिउं नरगि पीआरणुं,
दसरथनन्दरिण रामदेवि किउं अकह कहारणउं, ॥ १६ ॥

नियनिय मंदिरि भरणइं नारी, सांभलि परतार,
नारि नियारिय जो अतउ, हिव जारिणसि सार,
रंगइं धरणी भरणह, नाह, सुरिण धम्म विचारो,
मनुसुद्धिहि हिव करि न सामि, परस्त्री परिहारो, ॥ १० ॥

वस्तु

जूय वारिय जूय वारिय मंससंजुत्त,
गुरापारणु नवि जारणीइ, वेसवसरण नयरणो न दीसइ,

पारधि जीव न मारिइं, चोर कोइ दष्टिइं न दीसइ,
कुमरड राउ उम्मूलि तउं परस्त्रीउ परिहार,
सातइ वसण निवारि करि गहिउ धम्मह मार, ॥ २१ ॥

पाणिय गालइं तिन्नि वार अणात्थमिय करंता,
कुमरनरिंद तणइं राजि सावइ पडिक्कंता,
वड्डा सरावग थिया अच्छइं, श्रावकविधि पालइं,
धम्महि लीणा रातिदिवस सवे पातग टालइं, ॥ २२ ॥

वहिनडली बंधव भणइ, ए मज्झ कउतिग भावइं,
हेमसूरि गुरु तणउ वोध अम्ह भलउ सुहावइं,
कुमरविहार वन्दावि चालि, जिण राय कराविय,
अणहिलवाडउं कुमरपालि तन्नितलि मंडाविय, ॥ २३ ॥

सोवनथंभे पूतली ए आपण जोअन्ती,
निरुवम रुविहि आपणइ ए तिहुयण मोहन्ती,
हीरे माणिक्य चूनडी ए पाथरखंड जडिया,
निम्मल कंती विकरासि अइ निउणे वडिया, ॥ २४ ॥

मंतिय मोकलि देसि देसि वहु संघ मेलावइ,
धामी वहु भासीस दिइं, राउ जात चलावइ,
देसि–विदेसह मिलिय संघ, पहुतउ गूजरात,
वाहड मंत्री वीनवइ ए, सुणि स्वामिय वात, ॥ २५ ॥

चउरा गूडर संघ तणा, नवि लाभइ पार,
चालि न नरवर सुरट्ठ भणी, म न लाइ सि वार,
दीधउं संघपति तीरथ भणी पहिलउं पीआणउं,
भोली वुद्धिहि आपणिए हुं किंपि वक्खाणउं ? ॥ २६ ॥

वस्तु

वहुय देसह वहुय देसह संघ मेलेवि,
जिणभत्तिहि एगमणि भूमिनाहु सेत्रुंजि वच्चइ,
गाइं वाइं रुलिय भरी, संघलोक आणंदि नच्चइ,
ठामि ठामि वधाविइं हिव हुइं मंगल चारु,
अरथहि वरसइं मेह जिम दानि मानि सुविचारु, ॥ २७ ॥

रोला

सूरिराय सिरि हेमसूरि जिण धम्मधुरीणा,
समणा-सनणी सहमसंख. मनि समरसि लीणा,

मिलिया सावतरणा साथ, धनि धनद समाणा,
सावीय वहती सीसकमलि गुरु–गुरुणी आणा, ॥ २८ ॥
मेरी मूंगल ढोल घणा घमघमइं नीसाणा,
खेला नाचइं रंग भरे नवनवा सुजाणा,
धामिणि तरुणि दिइं रासु करि सग्रह आवी,
मधुरी वाणिहि भणइं भास किवि कंन सुहावी, ॥ २९ ॥
बन्दी जयजयकार करइं कइ दीहर सादि,
गायइं गायण मत्त सरे कवि किंनर आदि
चालीय गयघड माल्हती ए झरती मद वारि,
खोणी खणंता तुरय लाप, करहः सइं च्यारि, ॥ ३० ॥
राउत पायक राजलोक अनइ मागणहार,
संख विवज्जिय मिलिय लोक, कोइ जाणइ मार ?
कि अह चालिउ भरत राउ कि सगरनरिंदो ?
राया संपइ दसनभद्द ? कि कन्ह गोविंदो ? ॥ ३१ ॥
कि वा दीसइ नलनरिंदु कि देवह राउ ?
भ्रंति उपज्जइ जोयतां ए नरवइ समदाउ,
संघपति करतउ गामिगामि जिण पूज अवारी,
पहुतउ सेत्रुजि, दिह दाण, रिद्धि गणइ असारी, ॥ ३२ ॥
दोपी हरषी संघवी ए रिसहेसरु सामी,
वन्दइ पूजइ थुणइ भावि, मिलिया सवि धामी,
मंडिय रेवइमंडणउ जायवकुलसारो,
सीलिहिं सुन्दर, नाणवन्तु सिरि नेमिकुमारो, ॥ ३३ ॥
संघसहित पहुपूज करी राउ दाणु दियन्तो,
वाजत गाजत चालियउ हरसिंहिं उल्हसन्तो,
धीरू गुहारिय वउणथली, मंगलपुरि पासो,
दीव, अजाहरि, कोडिनारि, पाटणि जिणु पासो, ॥ ३४ ॥

वस्तु

चडिय भूपति चडिय भूपति नाहु सेत्रुजि,
रिसहेसर पणमीयइ नरय तिरिय जो दुक्ख वारइ,
तह उज्जिलि नेमि जिणु काम कोह तिहिं स्वामि वारइ,
मंगलि पाटणि वउणथलि, दीवि अजाहरि देव,

कोडीयनारि जुहारि करि, पाटणि पहुतउ हेव, ॥ ३५ ॥

भणइ कुमरउ भणइ कुमरउ, रिसह अवधारि,
करि जाडी हूं वीनवउं, सामि पासि हूं काइ न मागउं,
जिहां कुले तिहां नवि उलखिउ तिहां चकवइ म देउ,
सिरि सेत्रुंजइ गिरिसिहरि वर पंपीउ करेइ, ॥ ३६ ॥

रोला

सांनिधि सासणदेवि तणइ संघि कीधी जात,
पाटणि आवी नारि करइ घरि घरि इम वात,
कीधी जंपुरण जात अम्हे एहु सामि पसाउ,
प्रतपउ कांडि दीवालियहं हेमसूरि सिउं राउ, ॥ ३७ ॥

कासी कोसल मगध देस कोसंबी वच्छा,
मरहठ मालव लाडदेस सोरीपुर कच्छा,
सिन्धु सवालप कासमीर कुरु कन्ति सइंभरि,
कान्हडदेस कान्हडिय भणइ, जाणिय तालंधरि, ॥ ३८ ॥

वस्तु

मारि वारीय मारी वारीय देस अड्ढारि,
देस विदेसह मेलि करि भविय लोक जिणि जत्त कारिय,
चऊदसंह चालीसहं राय विहार किय रिद्धि सारिय,
मोगउ मूंकी जेण हिव जगि लीधउ जसवाउ,
वूउ न होसिइं चिहु युगे कुमरउ सरिसउ राउ, ॥ ३९ ॥

रोला

त्रिहु भुवणे जसु कीत्ति लईइणि गूजरराइं,
कृतयुग कय अवतारि नेव गंजइ कलिवाइं,
सहिय विभावठि कम्मदोसि जिम वंभ चकीसरि,
देवभूमि गिइं सिद्धचक्क जयसिंह नरीसरि, ॥ ४० ॥

चुलिक्यवंसो तिहुणपाल–कुलअंवर–भाणू,
विक्कम वच्छरि वरतत ए एगार नवाणूं,
पाटि वइठउ कुमारपालु वलि, भीमसमाणउ,
मंडइ रणरंगइ जासु तणइ कोइ राउ न राणउ, ॥ ४१ ॥

मेरु ठामह न चलइ जाव, जां चन्द–दिवायर,
मेघनागुजां धरइ भूमि जां सातइं सायर,

धम्मह विसउ जां जगहमाहि, घूय निश्चल होए,
कुमरउ रायहं तणउ रासु तां नन्दउ लोए, ॥ ४२ ॥
सूरीसर सिरि सोमतिलय गुरू पायपसाया,
वुह देवप्पह गणिवरेण चिर नन्दउ राया,
पढइ गुणइ जे सुणइ रासु जण हरषिइं लेई,
सविहु दुरियहं करइं छेह सिवपुर पामेई, ॥ ४३ ॥

॥ इति कुमारपालरास समाप्तः ॥

सम्वत् १५५६ वर्ष चैत्र वदि ३ शुक्रे भुवनवल्लभगणि लषितं ।

( श्री अगरचंद नाहटा के सौजन्य से )

# पंचपाण्डव चरित रासु [1]

१४वीं शताब्दी में प्रबन्धात्मक शैली में लिखे गये समरारास के पश्चात् १५वीं शताब्दी की सबसे प्रमुख कृति श्री शालिभद्र सूरि विरचित पंचपाण्डव चरित रासु है। रास परम्परा की यह रास एक प्रमुख कड़ी है। विद्वानों ने इस कृति पर किंचित प्रकाश डाला अवश्य है, [2] परन्तु स्वतन्त्र रूप में हमें इस रचना का पाठ हाल ही में प्रकाशित गुर्जर रासावली से प्राप्त होता है। सम्पादकों ने इस पाठ को वड़ोदा की एक प्राचीन प्रति में उपलब्ध होने वाले पाठों में से एक कहा है। रचना की प्रति महाराज जसविजय के पास सुरक्षित है।

ये शालिभद्र सूरि भरतेश्वर-वाहुवली रास के रचयिता से भिन्न कवि हैं। अब तक उपलब्ध रचनाओं में पंचपाण्डव चरित रासु ने वर्ण्य विषय, कथा-वस्तु छन्द और भाषा सब दृष्टियों से नवीन योग दिया है। शालिभद्रसूरि पूर्णिमा-गच्छ के थे। यह रास नर्मदा के किनारे स्थित नादउद्र नामक नगर में लिखा गया कवि ने स्वयं भी अपने समय के लिए परिचय दिया है जिसका उल्लेख सम्पादकीय में भी मिलता है। [3]

आदिकालीन हिन्दी जैन रचनाओं में अब तक हमें धार्मिक कथाओं, चरित नायकों, पुराण पुरुषों, एवं उपदेशों आदि से सम्वन्धित विषयों का ही विवेचन मिलता है परन्तु पौराणिक आख्यान को कथा-वस्तु के रूप में स्वीकार करने वाले श्री शालिभद्र सूरि ही हैं।

---

१–पंचपाण्डव चरित रासु; गुर्जर रासावली; G. O. S. CXIII वड़ोदा पृ० १–३४।

२–आपणा कवियो : श्री के० का० शास्त्री, पृष्ठ २६६।

३–गु० रासावली : पृष्ठ ३—It was composed in V. S. 1410 i. e. 1354 AD. and the matter of the poem ia based as the poet says on "तंदुल वेयालीयसुत्त" Thus the date of the composition is mentioned by the poet himself.

प्रस्तुत रास में पांचों पाण्डवों के चरित के रूप में सम्पूर्ण महाभारत का सार है। पाण्डव चरित जैनियों द्वारा विरचित संस्कृत काव्यों में भी मिलता है। गुजराती विद्वानों ने भी महाभारत लिखा है। पंचपाण्डव चरित रासु की कथा महाभारत की कथा से मेल तो खाती है, परन्तु कुछ रचना स्थलों, घटनाओं और प्रमुख पात्रों को कवि ने अपने जैन धर्मानुसार मोड़ा है तथा उसी के अनुसार उसकी सृष्टि भी की है। रासकार ने प्रमुख चरित्रों को जैन परम्पराओं के ताने बाने में उलझाकर कथा सूत्र प्रस्तुत किया है।

पूरी कथा १५ ठवणि में विभक्त है। ठवणि शब्द सर्ग विभाजन का सूचक है। भरतेश्वर-बाहुबली-रास, [1] मयणरेहा रास [2] आदि में ठवणि का प्रयोग मिल जाता है। प्रत्येक ठवणि के बाद रासकार ने वस्तु छन्द दिया है। सिर्फ अन्तिम ठवणि को छोड़कर जिसमें उसने वस्तु छन्द अलग नहीं रक्खा। कवि ने ठवणि और वस्तु को मिला दिया है।

कवि ने रास की कथा का प्रारम्भ नेमिजिनेंद्र तथा सरस्वती की वन्दना करने के पश्चात् द्वितीय ठवणि से ही किया है। गंगा और शन्तनु का प्रेम तथा गंगा का उनकी अहेरी प्रकृति से रूठ जाना व अपने पुत्र गांगेय के साथ रूठ कर अपनी माँ के यहाँ चले जाने का वर्णन मिलता है। गांगेय आश्रम में शन्तनु से शिकार के लिए विरोध करता है:—

हरिण एक हरिणी सुं खेलइ,
कोमल वयणि हरिणी बोलइ, पेखि पेखि प्रिय पारधीउ
नितु नितु राउ अहेडइ चल्लइ
रोसि चढी राणी इम बुल्लइ, प्रियतम पारधि मन करेउ
धनुष कला साउलउ पढावइ
जीव दया नियचिति रहावइ, बोधि चारण मुनि तणइ [3]

वस्तुतः जिनधर्म ही सच्चा मार्ग है यह जानकर गंगानन्दन ने अहेरी पिता को अहेर से रोका व उनसे युद्ध करने को तैय्यार हो गया। गंगा ने आकर दोनों को शान्त किया। गंगा के न आने पर शान्तनु एक धीवर कन्या पर मुग्ध हो जाता है और राजा को प्रतिश्रुत करा कन्या सत्यवती का विवाह उनके साथ कर देता है। वर्णन की सरलता द्रष्टव्य है:—

---

१–भरतेश्वर बाहुबली–रास; श्री गांधी।
२–हिन्दी अनुशीलन; वर्ष ६, अङ्क १–४; पृष्ठ १००–१०३।
३–G. O. S. CXIII, पृष्ठ ३४।

सांभलि सामी अम्ह घर मूनो, तुम धरि अछइ गंगा पूतो
मइं वेटी जउ तुम्हह देवी, तउसइं हथि दूख भरेवी
कुरुवंसह केरउ मंडणु, राज करेसि गंगा नंदणु
धीय महारी तणा जिवाल, ते सवि पामइ दुख कराल [1]

सत्यवती के दो लड़कों में से पहला कर्मो के दोष से बचपन में ही मर गया व दूसरा कुमार विचित्र वीर्य हुआ जिसने काशीराज की अंबा, अंबाली और अंबालिका तीन कन्याओं से विवाह किया। जिसके क्रमशः विदुर, पाण्डु व धृतराष्ट्र हुए। धृतराष्ट्र ने गांधारी से और पाण्डु ने माद्री से विवाह किया। कुन्ती के कर्ण कुमारी अवस्था में उत्पन्न हुआ इसकी अन्तर्कथा जैन महापुराण में [2] एक विद्याधर की अंगूठी से सम्बन्धित है। यहां कवि ने इतना ही वर्णन किया है कि किस प्रकार पुण्यवंती भी पाप करते है। कर्ण मंजूसा में डाल कर गंगा में वहा दिया गयाः—

मरिणीय आपी पंड कुमरि आपणीय जि थवणी
सहियर वलि एकंति हुई पुत्तू जायउ रमणी
गंग प्रवाहिउ रयण माहि वालेउ मंजूसं
कीजइ पातकु पुण्यवंति कई लाज कि रीसं

इधर गांधारी के १०० कौरव पाण्डु के ५ पुत्र पांडवों से ईर्ष्या रखने लगे। अर्जुन धनुर्विद्या और "राधावेध" (मत्स्यवेध) में सफल उतरे।

चतुर्थ ठवणि में कवि ने अखाड़े में राजपुत्रों के शौर्य प्रदर्शन का आयोजन मंच पर किया। युधिष्ठिर तो अजातशत्रु थे, भीम दुर्योधन में गदा युद्ध हुआ, अर्जुन और कर्ण में द्वन्द्व युद्ध अर्जुन के इन वाक्-वाणों से नहीं हो सकाः—

अरजुन वोलइ, रे अकुलीन, अरजुन झूझिसि मइं सुं हीन
अरजुन सरसी मेड़ि न कीजइ, नियकुल मानिं गरव वहीजइ
इम आपणपुं वणूं वखाण, वोलि न नियकुल तणूं प्रमाणूं
मइं गंगा ऊगमतइ दीस, लाधी रतन भरी मंजूस [3]

अखाड़े में भी अर्जुन विजयी हुए। इधर द्रौपदी का स्वयंवर होता है और पांचों पतियों से विवाह होने का कारण चारणमुनि द्रुपद को पूर्वजन्म से

१—वही, पृष्ठ २।
२—उत्तरपुराण; पृष्ठ २४५, श्लोक सं० १०४, श्री गुणभद्राचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी।
३—G. O. S. CXIII, पृष्ठ १३।

सम्बन्धित वतलाते हैं। प्रत्येक पाण्डव की नारद द्रौपदी के साथ अवधि बांध देते हैं, उल्लंघन पर अर्जुन को १२ वर्ष वन में रहना पड़ता है जहाँ वे वैताढ्य पर्वत पर आदिनाथ का अभिनन्दन करते हैं। वहाँ अपने मित्र चन्द्रचूड़ की वहिन की वे सहायता करते हैं। आगे कवि ने पाण्डवों का जुआ मे अपकर्ष व वनवास दिखाया है। सभा में द्रौपदी का वस्त्र हरण होता है। आगे वनवास में भीम का राक्षसों को मारना, लाक्षागृह से वचना, भीम का हिडिम्वा से विवाह आदि का वर्णन मिलता है।

दुर्योधन पाण्डवों से प्रियंवद को भेजकर पुनः सहायता मागता है द्रौपदी क्रुद्ध होती है। फिर अर्जुन विशालाक्ष विद्याधर के लड़के को हराकर इन्द्र से शस्त्र प्राप्त करता हे। दुर्योधन की वहिन के पति ने द्रौपदी का हरण किया अर्जुन उसे भी हराता है। दुर्योधन ने पाण्डवो के विनाश की घोषणा की। एक पुरोहित के लड़के ने कृत्या राक्षसी उन पर छोड़ी। नारद की आज्ञा से पाण्डव साधना में लग गये। विराट के पास पाण्डवों का अधिवास रहा। कृष्ण दूत वनकर दुर्योधन के पास गये। दुर्योधन न माना। भयंकर युद्ध हुआ। असंख्य योद्धा काम आये। अन्तिम ठवणि में सव पाण्डव जैन दीक्षा लेते हैं। नेमिनाथ उनको प्रवज्या देते है। परीक्षित को हस्तिनापुर का राजा बनाकर धर्म घोष उन्हें दीक्षा देकर उनका पूर्व भव, सुरक्षित, संतन, देव, सुमति और सुभद्र आदि नामों से स्पष्ट करता है। उन सबने यशोधर के समक्ष साधु वृत्ति स्वीकार की तथा अणूत्तर स्वर्ग से च्युत होकर पाण्डव बने और अव पूर्णता को प्राप्त हुए।

इस प्रकार सम्पूर्ण महाभारत को कवि ने ७९५ छन्दों में संजोया है। भाषा की सरलता, जन-साधारण के लिए रास का वोधगम्य होना तथा पौराणिक कथानक को नई रेखाओं में वांधना कवि की प्रतिभा के द्योतक है। पात्र थोड़े है। पांचों पाण्डव द्रौपदी, कुन्ती दुर्योधन कर्ण आदि। पात्रों से यह ज्ञात होता है कि कवि ने साधु असाधु दोनों प्रकार के पात्रों का वर्णन कर असत्य पर सत्य की विजय दिखाई है। कवि के प्रयोग मौलिक है। जो भाषा की दृष्टि से मध्यकालीन गुजराती या राजस्थानी के मौलिक प्रयोग एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण प्रस्तुत करते है।

जहाँ तक कथा रूढि और कथा परम्परा का प्रश्न है, कवि ने दोनों का सम्यक् निर्वाह मौलिक अनुदान के रूप मे किया है। पाण्डवों की कथा परम्परा का प्रारम्भ अपभ्रंश साहित्य से ही हो जाता है। ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना में सुरक्षित हरिवंश पुराण के यादव, कुरु, युद्ध और उत्तर इन चार कांडों

में से कुरु व यादव कांडों में पाण्डव चरित वर्णन मिल जाता है। [1] जैन महापुराण में [2] भी पाण्डवों की कथा का नेमिनाथ के प्रसंग में आंशिक उल्लेख मिलता है। आमेर भण्डार में यशः कीर्ति का लिखा महाकाव्य लेखक को मिला है जिसमें कवि ने ३४ संधियों में पाण्डव कथा का वर्णन किया है। इस प्रकार कथा परम्पराओं (Cycles) के रूप क्रमशः परिवर्तित होते रहे हैं। प्रस्तुत रास में रचनाकार ने अनेक स्थलों पर कथा में मौलिक घटनाओं का नवोन्मेष किया है तथा अनेक मनोवांच्छित मोड़ दिए हैं, जो घटना वैचित्र्य तथा कथा में मौलिकता की सृष्टि करते हैं और वैष्णव महाभारत से भिन्न हैं। कवि ने कथा का आधार महाभारत ही रखा है पर उसकी परिवर्तित कथाओं पर जैन धर्म व अहिंसा का प्रभाव सर्वत्र स्पष्ट है। कुछ नवीन घटनाएँ इस प्रकार हैं:—

१—गंगा का शान्तनु की अहेर प्रवृत्ति का विरोध करना तथा रुठ कर पितृगृह गमन, गांगेय का अहिंसा प्रेमी होना व जैन धर्म स्वीकार करना तथा अपने हिंसक पिता से युद्ध करना। कुन्ती व पाण्डु के पूर्व प्रेम व सन्तानोत्पत्ति का प्रसंग तथा कुंवर परीक्षा व राधावेध का प्रसंग।

२—द्रौपदी के स्वयंवर में उसके हाथ से जयमाला पांचों पाण्डवों के गले में जा गिरना और चारण मुनि का द्रुपद को द्रौपदी का पूर्व भव समझाकर अदृश्य होना। [3] हरिवंश पुराण में कवि ने अहिंसा में प्रभावित हो मत्स्य वेध के स्थान पर धनुष चढ़ाने की ही कल्पना की है, [4] पर प्रस्तुत रास में मत्स्य वेध भी है व जयमाला वरण भी।

३—अर्जुन का वनवास में वेतढ्य (वैयड्ढह) पर्वत पर जाकर आदिनाथ को नमन करना और मणिचूड़ की बहिन को छुड़ाकर पुनः उसके पति को देना।

---

१–अपभ्रंश साहित्य; श्री हरिवंश कोछड़, पृष्ठ ६८।

२–महापुराण–उत्तरपुराणम्; श्री गुणभद्राचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी संस्करण पृष्ठ ३८०, श्लोक ७३–९०।

3 Then the reference as to this strange incident is made to चारण sage, who was there. He narrates the previous births of Draupdi and informs how she staked all her merit for a foul determination of realizing five husbands in the next birth.–G. O. S. CXIII page 352.

४–अपभ्रंश साहित्य; श्री कोछड़ पृष्ठ ६८।

४—युधिष्ठर का राजसूय यज्ञ में शांति जिनेन्द्र की प्रतिमा का अवस्थापन करना [1] प्रियंवद का प्रसंग तथा पाण्डवों का पुनः अपने असली स्वरूप को ग्रहण करना।

५—पाण्डवों के जाने पर कुन्ती व द्रौपदी का नमोकार मंत्र का ध्यान करना। पुरोहित का पाण्डवों पर कृत्या छोड़ना तथा पुलिंद का आकर कृत्या से उनकी रक्षा करना। कालकुमार व जीवंयशा का अग्नि विसर्जन।

६—पाण्डवों को नेमिनाथ के उपदेशों से निर्वेद होना तथा दीक्षा ग्रहण। धर्म घोप का पूर्व भव बताना व उनको निर्वाण प्राप्ति होना आदि घटनाएं मौलिक है।

रास में अनेक वर्णन मिलते है जो जन-भापा में है। सरलता और सहज अभिव्यक्ति ही इस काव्य की कसौटी है। राजपुत्रों के द्वन्द युद्ध एवं उत्साह मूलक मुद्राओं के चित्रण वड़े प्रभावशाली वन पड़े है:—

केवि दिखाडइं खांडा सरमु, केवि तुरंगम जाणइ मरमु
चक्र छुरी किवि सावल मालइ, किवि हथियार पडंता झालइ
पहिलुं सरमइ घरमह पूत्रो, जेह रहइं नवि होइ शत्रो
अठिउ भीमु गदा फरंतउ, तउ दुयोधन मिउइ तुरंतउ
.... .... ....
लोह पुरुष छइ चक्रि भमंतउ, पंच वाणि आहणइ तुरंतउ
राधा वेधु करीउ दिखाडइ, तिसउ न कोई तीण अखाडइ
तीछे हूंफी अठइ करणू, अरजुनु पामइ मूंकरि मरणू
रोसि ऊयइ वेउ झूझेवा, रणरसु जोइं देवी देवा
धरणि धसक्कइ वाजइ गयणू, हारिइ जीतइ जय जयवयणू
हीया धसक्कइ कायर लोक, संततणा मन करइ सशोक
जाणे वीज पडि (अ) अकालि, जाणे मुंद्र खुइया कलिकाल
(ठवणि ४ पृ० १३)

कवि का स्वयंवर, नगर तोरण, अनेक वाद्यों और उत्सवों का वर्णन वड़ा प्रवाहपूर्ण वन पड़ा है:—

वाजीय त्रंवक गुहिर नीसाण, दिणयरो रेणिहि छाईउए

---

1—According to the Jain Tradition the Rajsuya ceremony consist in raging a temple dedicated to one of the Tirthankaras, where the kings are invited. G. O. S. CXIII. page 354.

पहुतउ जाणीउ पंडु नरिंदु, द्रूपदु पहूतए सामहो ए
तलीया तोरण वंदरवाल, नयरु ढलोचिहि छाइउ ए
मणि मय पूतली सोवन थंभ, मोतिउ चउक पूराविया ए
कूंकय चंदणि छडउ दिवारि, घरि घरि तोरण ऊभीयां ए
नयरि पइसारउ पंडु नरिंद, किरि अमराउरि अवतरी ए

कवि के स्त्री और पुरुष दोनों के रूप वर्णन में कलात्मकता मिलती है। पांचाली का शृंगार वर्णन, अत्यन्त स्पृहणीय है। सलोने नयन, सुरभित कवरी, किस्तूरी तिलक, सुन्दर कंकण, नूपुरों की रुन-झुन और तांबूल की भांति लाल अधर सभी में नूतनता है। स्त्री और पुरुष दोनों के रूप वर्णन देखिए:—

द्रूपद रायह द्रूपद रायह तणी कूंयारि
तसु रुपह जामलिहि त्रिहुउं भूयणि कइ नारि नत्थीय
सीसी कडुंवरि कुसुमह खूंपु, कानि कनेउर झलहलइं ए
नयण सलूणीय काजल रेह, तिलउ कसत्तूरी यम णिधडीय
करयले कंकण मणि झमकारु जादर फालीय पहिरण ए
अहर तंबोलीय द्रूपदी वाल, पाए नेउर रुणझुणइं ए

और पुरुष वर्णन में:—

सीसि चमर वंवाल अनु कंठि कुसुमह माल
अनुकंठि कुसुमह माल किरि सुं, मयणि आपणि आवीइ
कोइ इंदु चंदु नरिंदु सइंवरि, पहुतु इम संभावीयइ
(ठवणि ५, पृ० १५)

द्यूत क्रीड़ा में हारे हुए पांडवों का और सभा में द्रौपदी को केश पकड़ कर खींच कर लाने का कवि ने अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है। भाषा की सरलता और वर्णन की चित्रात्मकता से वर्णन और भी संजीव हो उठा है:—

राखिउ ए राउ जूठिलु, विदुरह वयणू न मानीउं ए
हारीयां ए हाथियं थाट, भाईय हारीय राजि सउं ए
हारीय ए द्रूपदह धीय, ऊदालिय सवि आभरण ए
ताणीय ए केसि धरेवि, देवि दुसासणि दूजणिहि ए
आणीय ए सभा मझारि, दुरीय द्रुयोधन इम भणइं ए
"आविन ए आवि उत्संगि द्रूपदि वइसिन मुझतणं ए"
इम भणीए दियइ सरायु, रु (—) हुजे तुं कुलि सउं ए
कुपीउ ए काढवी चीरु अट्ठोत्तर सउ साडीय ए
(ठवणि ६, पृ० १७)

और भी अनेक काव्यात्मक स्थल हैं। द्रौपदी का करुणाजनक वर्णन कवि ने किया है। कृष्ण के दूत बन कर जाने पर भी दुर्योधन उन्हें "भुइ लद्धी भूयबलिं एक चास हिवए न पामइं" शुष्क उत्तर देता है, तो महायुद्ध की तैय्यारियाँ होती हैं, सारा दृश्य युद्ध में बदल जाता है। युद्ध वर्णन, वीरता एवं उत्साह के अच्छे चित्र कवि ने उरेहे है। सैन्य वर्णन और युद्ध की अतिशयोक्तियों की चमत्कारिता द्रष्टव्य है:—

दुरयोधनु अति मत्सरि चडीउ, जाई जरासिंधु पाए पडीउ
"मुझ रहइं पहिलउं दिउ अगेवाणु पंडव कन्ह दलउं जिममाणू"
ईंहा सेनानी गंगेउ अह विहसी जुडियां दल बेउ (पृ० ३०)

हाथी घोड़ा और असंख्य पैदल सेना का युद्ध वर्णन, सिरों का कट कट कर गिरना और नाचना, सामंतो की गर्व मिश्रित हंसी कुरुक्षेत्र को और भी उत्साहपूर्ण बना देती है। वर्णन की अलंकारिता तथा अनुप्रासात्मकता देखिए:—

दलमिलीयां कलगलीय सुहड गयवर गलगलीया
धर ध्रसकीय सलवलीय सेस गिरिवर टलटलीया
रणवणीया सवि संख तूर अंबरु आकंपीउ
हय गयवर खुरि खणीय रेणू ऊडीउ जगु झंपीउ
पडई बंध चलवलइं चिंध सींगिणि गुण सांधई
गइंवरि गइंवरु तुरगि तुरगु राउत रण रूंधइं
भिडइं सहड रडवडइं सीस धड नड जिम नच्चइं
हसइं घुसइं ऊससइ वीर मेगल जिम मच्चइं
गयघडगुड गडमडत धीर धयवड धर पाडइं
हसमसता सामंत सरसु सरसेलि लिखाडइ

जयद्रथ के लिए प्रतिज्ञा, अर्जुन का शौर्य और द्रोण की वीरता द्रष्टव्य है। कहीं कहीं बीभत्स के भी दर्शन होते हैं। कवि ने कर्ण, शल्य, शकुनि, दुर्योधनसबके वध का वर्णन किया है:—

पाडइ चिंध कबंध बंध धर मंडलि रोलइ
वाणि विनाणि किवाणि केवि अरियण धंधोलइ
कुड्ड करीउ गोविंदि देवि रथु धरणिहिं खूतउ
मारीउ अरजुनि करणू कूडि रणि अणभूभतंउ
शल्यु शकुनि बेउ हणीय वेगि नकुलिं सहदेवि
सरवरमाहि कढावीयउ दुरयोधनु दैवि
राइ संनाहु समोपीयउ भीमिहिं सुं भिडेउ

गदापहारिं हणीय जांघ मनि सालु मु फेडिउ

.... .... ....

सीसु गिखंडी तणउ तामु छेदीउ छलु साधीउ
पाय पराभव नइ प्रवेसि गति मागु विराधीउ (पृ० ३०-३२)

इस प्रकार शृंगार, करुण, वीर, रौद्र वीभत्स आदि भावों के चित्र खींच कर, अन्त में पाण्डवों को जैन दीक्षा द्वारा सम्पूर्ण रास का समाहार शांत और निर्वेद भाव में कर दिया है। धर्मघोष का कथन उल्लेखनीय है:—

ऊपनुं केवल नाणु सामीय ए नेमि जिणेसरहं ए
सांभली सामि वखाणू विरता ए सावयव्रतु धरइं ए
वरतीय देसि अमारि नासिक ए जाईउ जिणु नमइं ए

.... .... ....

सामीय गणहर पासि पांचह ए हरिखिहि व्रतु लिइं ए

.... .... ....

बोलइ गुरु धर्मघोषु "पुत्र भवि ए पांच ए कुणबीय ए
वसइं ति अचलह गामि बंधव ए पांच ए भाविया ए
सुरईउ संतनु देवु सुमतिऊ ए सुभद्र सुचांमु ए
सुगुरु यशोधर पासि हरखिहिं ए पांच ए व्रतु धरए
कणगावलि तपु एकु बीजऊ ए करइ रयणावली ए
मुकुतावलि तपु सारू चउपऊ ए सिंहनिकीलिऊ ए
पांचमु आंबिलवर्धमानु तपु तपी ए अणूतरि सविगिया ए
चवीयना तुम्हि हूआ पंचइ ए भवि ए सिवपुरि पामिसउ ए
साभली नेमिनिरवाणू चारण ए सवणह सुणि वयणि
सेत्रुजि तीथि चडे पांचह ए पांडव सिद्धि गयाए
(ठवणि १५, पृ० ३३)

इस प्रकार उक्त उद्धारणों से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने कई घटनाओं का परम्परित वर्णन करते हुए भी मौलिक सृजन किया है।

प्रस्तुत रास के छन्दों में बड़ा वैविध्य है। सम्पूर्ण रचना को १५ ठवणि [1] में विभक्त किया गया है। इस रास की ठवणि में विशेषता यह है

---

१—ठवणि is derived from Skt. स्थापनिका Pkt. ठवणिआ It forms the narrative part proper; and in that sense resembles a कड़वक of Ap and OG. poetry while वस्तु*

कि उसका अनुगमन वस्तु छन्द करता है। भरतेश्वर वाहुवली रास के छन्दों से इसका पर्याप्त साम्य है। प्रथम ठवणि या ठवणि में २२ कड़ियों में १६+१६+१३ मात्राएं हैं तथा २३वीं कड़ी में वस्तु छन्द है। द्वितीय ठवणि में चौपाई तथा उसके साथ द्विपदी भी, अतः यह छन्द मिश्र वन्ध कहा गया है।[२] तृतीय में रोला है। चौथी पांचवी में दोहा चौपाई है। छठी ठवणि के सम चरण में दोहा तथा विषम में चौपाई है। समचरण के अन्त में ए मिलता है। देशी सवैया की भांति प्रयुक्त चार कड़ियाँ भी इसी ठवणि में मिलती है। पुनः समचरण में दोहा और चार चरणों के साथ एक हरिगीतिका भी मिलती है और अन्त में वस्तु छन्द है। जिसके नाम से ही कथा का बोध होता है।[३] ७वीं में सोरठा और ८वीं में २३ कड़ियों तक शुद्ध सोरठे मिलते है, जिसके विषम पद में अनुप्रास मिलता है।[४] ९वीं से १४वी ठवणि तक चौपाई ही मिलती है। वस्तु छन्द सबके साथ मिलता है। इस प्रकार कृति में छन्द वैविध्य स्पष्ट है।

सूक्तियाँः—रास में अनेक प्रसिद्ध सूक्तियाँ है, जो उल्लेखनीय है।

(१) किम रयणायरु हीयइं तरीजइ
(२) क्रमि क्रमि जुव्वणि तिणि पसरीजइ बीजतणी ससिरेह जिम
(३) कीजइ पातकु पुण्यवंति कइ लाज किं रीसं
(४) वाधइं पंचइ चंद जिम पंडव गुण गंभीर
(५) मंच चडयां सोहइ जिमचंद
(६) कुंडल सरिसउ लाधो बालो रंकु लहइ जिम रयण झमालो
(७) किसुं न कीधइ रात्रि अवसरि लाधइ परमवह
(८) देवु न गिणाई दैवु गिणइ पुण्युनइ पापु
संताप सुयणह करई पुण्य हीन जिमराय रोलई
दारिद्र दुक्खु केह भरई तृष्णा किज्जि गिरि सिहक ढोलइ

---

❀ is a conclusive link-verse, which sums up the contents of the previous ठवणि and the ठवणि to follow. G. O. S. CXVIII. भूमिका पृ० ७।

२–गुर्जर रासावली : पंचपंडव चरित रासु : पृष्ठ १२–१४।

3–The वस्तु metre as its very name expresses to a song of the outline of the story. It is a miniature itself, the first half of the first line always being repeated to signify that it is a ध्रूवपद। G. O. S. CXVIII. page 7.

४–वही ग्रन्थ : पृष्ठ २०–२२।

(६) भिडइ सहड रडवडइं सीस धड नड जिम नच्चइं
हसइं घुसइं अससइं वीर मेंगल जिम मच्चइ

प्रस्तुत रास की भाषा सरल हिन्दी है जिसमें प्राचीन राजस्थानी, जूनी गुजराती आदि शब्दों की वहुतायत मिलती है। अपने भावों को सरलता से व्यक्त कर देना और अपनी अभिव्यक्ति में पूर्ण ईमानदारी रखना तथा उसे क्लिष्टता से बचाकर जन-साधारण के लिए सुलभ बना देना ही सच्चे कवि व कविता की पहिचान होती है। इस कृति में अनावश्यक आलंकारिकता तथा कला-बाजियाँ नहीं हैं इसमें जो भी है, वह जनता का काव्य है। जिसमें मानव मात्र के लिए सन्देश है। १५वीं शताब्दी के रास में भरतेश्वर-बाहुबली रास के बाद यही रास सबसे महत्वपूर्ण है। भाषा में तत्सम शब्दों की पदावली विशाल पैमाने पर मिलती है। साथ में ही अपभ्रंश के शब्दों के तत्रतत्र उदाहरण मिल जाते हैं। सरल हिन्दी के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:—

(१) आगइ द्वार माहि जु वीतो पंचह पाण्डव तणउ चरीतो

(२) हरिण एक हरिणी सुं खेलइ, कोमल वयणि हरिणी वोलइ—
पेखि पेखि प्रिय पारधीउ।

(३) पूछइ राजा कहिससि वयणि, इणि वणि वसीइ कारणि
कवणि, बोलइ गंग महा सईय

(४) साचउ जाणइ जिण धर्म मार्गो तउमनि जुवण लगइ विरागो
गंगानंदणू वणि वसए

(५) ए अम्हारा कुल सिणगारी सामी अछइ अकन कूंयारी
कुरुवसंह केरउ मंडणू राज करेसि गंगानंदणु।

(६) हथिणाउरि पुरि कुर नरिदं केरो कुल मंडणु
सहजिहिं संतु सुहाग सोलु हुअनरवरु संतणु

(७) जनम महोछवु सुरकरइ नाचइ अपछर वाल
दुंदहि वाजइ गयणयले करणिंहि ताल कसाल

(८) विसु दीधउं दुरयोधनिहिं भीमह भोजन माहि,
अमृत हुईनइ परिणामिउ पुन्निहि दुरिउ पुलाइ

(९) अरजुन वोलइ रे अकुलीन अरजुन झूझिसि मइं सुंहीन
धिगु! रे धिगुरे देव विलासु पंचह पंडव हुइ वणवासु

(१०) रे राखस मुझ आगलि वाल मारिसि तउतू पूगउ काल

वस्तुतः आदिकालीन हिन्दी भाषा का शास्त्रीय रूप धीरे-धीरे किस तरह किन-किन इकाइयों (Units) से बनता गया, उन सब स्रोतो की सूचना हमें इस कृति से उपलब्ध हो जाती है। रास का उद्देश्य पाण्डवों के चरित पर प्रकाश डालना है। इसके अतिरिक्त कवि ने रास रमण व क्रीड़ा के लिए भी बनाया है:—

पंडव तणउ चरीतु जो पढए जो गुणए संभलए
.... .... ....
पूनिमपखमुणींद सालिभद्र ए सूरिहिं नीमिउ ए
देवचंद्र उपरोधि पंडव ए रासु रसाउलु (१५ ठवणि, अंतिमांश)

इस प्रकार प्रस्तुत कृति को कवि की शैली और भाषा की दृष्टि से एक उत्कृष्ट कृति कहा जा सकता है।

# पंचपंडव चरित रासु [1]

## ( रचयिता—शालिभद्र सूरि )

[ वि० सं० १४१० ]

नेमिजिरिगदह पय पणमेवी
सरसति सामिरिग मनि समरेवी
अंविकि माडी अणुसरउ ॥ १ ॥

आगइ द्वापर माहि जु वीतो
पंचह पंडव तणउ चरीतो
हरखि हिया नइ हुं भणउं ॥ २ ॥

रासि रसाउलु चरीउ थुणीजइ
किम रयणायरु हीयइं तरीजइ
सानिधि सासणदिवि तणइ ॥ ३ ॥

आदि जिणेसर केरउ नंदणु
कुरुनरिंदु हूउ कुलमंडणु
तासु पुत्तु हूउ हाथियउ ॥ ४ ॥

तीणइ थापिउ तिहूयणसारो
बीजउ अमरापुरि अवतारो
हथिणाउरपुरु वन्नीयए ॥ ५ ॥

तिणि पुरि हूउ संति जिणेसरु
संघह संतिकरउ परमेसरु
चक्कवट्टि किरि पंचमउ ॥ ६ ॥

---

१—देखिए—गुर्जर रासावली—गायडकवाड़ ओरिएन्टल ग्रन्थमाला वड़ोदा सी० १८, पृ० १—३४।

(8) रयाणायरु a slip; the MS. makes use of Padi-matra.

तिरिण कुलि मुणीय संतणु राम्रो
भूयवलि भंजइ रिउभडिवाम्रो
दाणि जगु ऊरिणु करए ॥ ७ ॥

अन्नदिवसि आहेडइ चल्लइ
पारधिवसणु सु किमइ न मिल्हइ
दलु मेल्ही दूरिहिं गयम्रो ॥ ८ ॥

हरिणु एकु हरिणी सुं खेलइ
कोमलवयणि हरिणी वोलइ
"पेखि पेखि प्रिय पारधीउ" ॥ ९ ॥

सरु सांधी राउ केडइ धाइ
हरिणउ हरिणी सहितु पुलाइ
ऊजाईउ गिउ गंगवणे ॥ १० ॥

नयणह आगलि गयउ कुरंगू
राय चीति जां हूयउ विरंगू
जोड वामूं दाहिणउं ॥ ११ ॥

तां वणि पेखइ मणिमइ भूयणु
तीछे निवसइ नारीरयणु
खणि पहुतउ राउ धवलहरे ॥ १२ ॥

जन्हनरिंदह केरी धूय
गंगा नामि रइसमरूय
ऊठइ नरवइ सामुहीय ॥ १३ ॥

पूछइ राजा "कहि ससिवयणि
इणिवणि वसीइ कारणि कमणि"
वोलइ गंग महासईय ॥ १४ ॥

"जो अम्हारुं वयणु सुणेसिइ
निश्चि सो वरु मइं परिणेसिइ

(19) The MS. writes स and म similarly; thus मुणीइ can be read सुणीइ; ओ in राम्रो and भडिवाम्रो of the next line is written as उ.

(27) MS. writes प for ख and प is written like ए

(43) reads मुणेसइ cf. footnote 1. 19.

खेचरु भूचरु भूमिघरो" ॥ १५ ॥
तं जि वयणु राइ मानीजइ
जन्हराय बेटी परिणीजइ
परिणी पहुतउ निययघरे ॥ १६ ॥
ए पुत्तु तसु कूखि ऊपन्नउ
विद्यालक्षणगुणसंपन्नउ
कला बाहत्तरि सो पढए ॥ १७ ॥
गंगानामि गंगेउ भणीजइ
क्रमि क्रमि जुव्वणि तिणि पसरीजइ
बीज तणी ससिरेह जिम ॥ १८ ॥
नितु नितु राउ अहेडइ चल्लइ
रोसि चडि राणी इम बुल्लइ
"प्रियतम पारधि मन करउ" ॥ १९ ॥
राइ न मानी गंगा राणी
तीणं दूखि मनि कुरमाणी
पूत्तु लेउ पीहरि गईय ॥ २० ॥
धनुषकला माउलउ पढावइ
जीवदया नियचित्ति रहावइ
बोधि चारणमुनि तणइ ॥ २१ ॥
साचउ जाणइ जिणधर्ममागो
तउ मनि जूवण लगइ विरागो
गंगानंदणु वणि वसए ॥ २२ ॥

वस्तु

राउ संतणु राउ संतणु वयणु चुक्केवि
आहेडइ चल्लीऊ पावपसरि मनि मोहि घूमीउ

---

(45) च and व become similar through the inadvertance of the scribe.

(46) तंजि is repeated in the MS. through the scribe's slip.

(67) MS. has राउसंतणु २. which is written twice in the text above for clarity.

पूत्तु लेउ पीहरि गई गंग तीण अवमाणि दूमीय
वात सुणी पाछउ वलइ जां नवि देखइ गंग
चउवीसं [वासं] रहइ जिमु रइहीणु [अणंगु] ॥ २३ ॥

[ ठवणी ॥ १ ॥ ]

आह मनमाहि नरिंदो पारधि संभावइ
सइं दलि रमलि करंतउ गंगातडि आवइ ॥
गंगतडा तडि अछइ ओयणु
वित्थरि दीरधि वारह जोयणु
पासहरा वागुरीय वहूय
पइठा वणि कोलाहलु हूय ॥
दह दिसि वाजइं हाक वहु जीवं विणासइं
एकि धुसइं एकि धायइं एकि आगलि नासइं ॥
दह दिसि इम जां वनु आरोडइं
जीव विणासइं तरूयर मोडइं
जां इम दलवइ पारधि लागइ
ताम असंभमु पेखइ आगइ ॥
विहुं खवे दो भाथा करयलि कोदंडो
वालीवेसह वालो भुयदंडपयंडो ॥
राय पासि पहिलुं पहुचेई
पय पणमो वीनती करेई ।
"सांभलि वाचा मुझ भूपाल
इणि वणि अछउं अम्हि रखवाल ॥
जेती भुइं तूं राओ तेती तूं सरणि
मुझ मनु कां इम दूमइ जीवह मरणि" ॥
तासु वयणु अवहेलइ राओ
अतिवणु घल्लइ जीवह घाउ
कोपि चडिउ तसु वणरखवालो

(71) The first Pada of the line is defective; वासं is left out in the MS.

(79) एक धुसइं repeated.

धनुष चडावइ जमविकरालो ।।
हाकी भड ऊठाडइ आगला ति पाडइ
सरसे जंपउ ढाडइ राउत रूंसाडइ ।।
वेटउ रुडु करंतउ जाणी
ताखणि आवी गंगाराणी
वेउ पखि भुझु करंतां राखइ
नियप्रिय आगलि नंदणु दाखइ ।।
देखी गंगाराणी राजा आणंदिउ
मेल्ही सवि हथियार वेटउ आलिंगिउ ।।
राउ भणइ "मइं किसउं पवारउ
हिव तुम्हि मइं सु घरि पाउधारो
राजु तुम्हारुं पूत्तु तुम्हारउ
अज्जीउ गंगे किसुं विचारउ" ।।
पूत्ति भतारिहिं देवी अतिघणुं मनावी
पूत्तु समोपीउ सय आपणि नवि आवी ।।
पिता पूत्तु वेउ रंगि मिलीया
देवि मुकलीवी पाछा वलीया
हथिणाउरि पुरि राजु करेई
क्षण जिम दीहा बहूय गमेई ।।
अन्ननिणंतरि रामलि करंतउ
जमणातडा तडि राउ पहूतउ ।
जल खेलंती दीठी वाल
वेडी वइठी रूपविमाल ।।
पूछइ वेडीवाहा तेडी
"ए कुण दीसइ वइठी वेडी" ।
वेडीवाहा तणु जु मामी
राय पामि पभणइ सिरु नामी ।।
"ए अम्हारा कुलसिणगारी

(102) MS. has मंगा for गंगा.

(111) मुकलीवी पाछांवी पाछा वलीया in the MS,

सामी अछइ अजीय कूंयारी ।
कोइ न पामुं वरु अभिराम
सफलु करूं जिम दैवह कामु" ॥

तसु घरि वडमी राउ मा वाली मागइ
वात स वेडीवाहा पुण चीति न लागइ ॥

"सांभलि सामी अम्ह घरसूत्तो
तुम्ह घरि अछइ गंगापूत्तो
मइं बेटी जउ तुम्हह देवी
तउ मइं हथि दूख भरेवी ॥

कुरुवंसह केरउ मंडणु
राजु करेमि गंगानंदणु
धीय महारी तणां जि बाल
ते सवि पामइं दूख कराल ॥

मुझ पासि तुम्हि किमुं कहावउ
तुम्हि अम्हारी धीय न पामउ" ।

इम निसुणीउ घरि पहुत नरिंदो
जिम विंध्याचलि हरीउ करिंदो ॥

मनि चिंतइ मा वात कुणहइ न कहेई
अंगे लागी झाल जिम देह दहेई ॥

कूंयरु वेडीवाहा मंदिरि
जाइउ मांगइ मा इ जि कूंयरि ।

वेडीवाहइं तं जि भणीजइ
तीह्रे कूंयरि प्रतिज्ञा कीजइ ॥

मंत्रि मडउउथा नहइ तेडइ
वेडीवाहा अंति सु फेटइ ।

"वरणु अम्हारं म पटउ पाम्बइ
देवादेवी महूयउ माग्विइं ॥

(129) Indefinitely reads: मूत्रो or मूनो; same way in the

निसुणउ मइं जि प्रतिज्ञा कीजइ
चांदुलडइ चिय नामु लिहीजइ ।
एकु राजु अनइ परिणेवुं
मइं अनेरइ जनमि करेवुं" ॥

निसुणीउ वयणु गभेलउ वोलइ
"कोइ न तिहुयणि जो तुम्फ तोलइ ।
निसुणउ हिव इह कन्न वृतंतू
एह रहइं होइ संतणु कंतू ॥

॥ वस्तु ॥

नयरु अच्छइ नयरु अच्छइ रयणउरु नामि
रयणसिहरु नरवरु वसइ तासु गेहि एह बाल जाईय
विद्याधरि अपहरीय जातमात्र तहिं जमण मिल्हीय-
इसीय वाच गयणह पडी तउ मइं लिद्ध कुमारि
सत्यवती नामिं हुसिए संतणघरनारि" ॥

[ ठवणि ॥ २ ॥ ]

पणमीउ सामीउ नेमिनाहु अनु अंबिकि माडी
पभणिसु पंडव तणउं चरितु अभिनवपरिवाडी ॥
हथिणाउरि पुरि कुरनरिंद केरो कुलमंडणु
सहजिहिं संतु सुहागसीलु हूउ नरवरु संतणु ॥
तसु घरि राणी अछइ दुन्नि एक नामि गंगा
पुत्तु जाउ गंगेउ नामि तिणि तिहूणि चंगा ॥
सत्यवती छइ अवर नारि तसु नंदण दुन्नि
सवे सलक्खण रूयवंत अनु कंचणवन्नि ।
पहिउलउ वेटउ करमदोसि वालप्पणि विवनउ

---

(158) नयरु अच्छइ २. The repetition is represented by the figure 2, by the scribe. We have in the text systematically repeated the expressions rather than wraiting 2, after the scribe.

(170) सलपण in MS, for सलक्खण.

विचित्रवीर्यु बीजउ कुमारु बहुगुणसंपन्नउ ।।
राउ पहूतउ सरगलोकि गंगेयकुमारि
तउ लघु बंधवु ठविउ, पाटि तिणि वयणविचारि ।।
कासीसरघरि तिन्नि धूय अंबिकि अंबाला
त्रीजी अंबा अछइ बाल मयणह जयमाला ।।
परिणावेवा तीह बाल सयंवरु मंडाविउ
गंगानंदणु चडीउ रोसि अणतेडिउ आव्यो ।।
समरि जिणीय सवि राय बाल लेउ त्रिण्हइ आव्यो
वउउ महोच्छउ करीउ नयरि बंधवु परिणाव्यो ।।
अंबिकि बेटउ धायराठु सो नयणे आधउ
अंबाला नउ पुत्तु पंडु त्रिहु भुयणि प्रसिद्धउ ।।
अंबानंदणु विदुरु नामु नामिं जि सरीखउ
खइ खीणइ पुणु विचित्रवीर्यु पंडु राजि प्रतीठिउं ।।
कुंतादिवि नउं लिविउं, रूपु देखीउ चित्रामि
मोहिउ पंडु नरिंदु चीति अति लीधउ कामि ।।
विद्याधरु वनि कुणिहि एकु मेल्हिउ छइ बांधी
छोडिउ पंडुकुमारि पासि तसु मुद्रा लाधी ।।
एतइं अंधकवृष्णि नामि सोरीपुरसामी
दस बेटा तसु एक धूय कुंतादिवि नामी ।।
पाटी आपणहारु पुरुषु सोरियपुरि पहुतउ
"पंडु वरीउ" पिय पासि कूंयरि संभलइ कहंतउ ।।
नवि जीमइ नवि रमइ रंगि नवि सहीय वोलावइ
वोलावी ती पहीय जाइ अणतेडी आवइ ।।
खीजइ मूंझइ रडइ बाल जिम सयरु संतावइ
कमलिणिकाणणि मणु समाधि सा किमइ न पामइ ।।
चंदु य चंदणु हीयइ हारु अंगार समाणउ

(181) आधउ in MS. for आंधउ.

'कुणहइ कांइ दहइ दूखु जाणीइ तु जाणउ ॥
नीलजु निविणु मइं अजाणु कांइ मारइ मारो
ईणि जनमि मुझ पंडुकुमर विणु नही य भतारो' ॥
विरहि विरागीय वण मझारि जाईउ मणि झायइ
'लवणिम जूवणु रुपरेह तां आलिहिं जाइ' ॥
कंठि ठवइ जां पासु डाल तरुयर णी..........
आविउ मूंद्रप्रभावि ताम मनि चिंतिउ सामि ॥
परिणीय आपी पंडुकुमरि आपणीय जि घरणी
सहीयर वलि एकंति हुई पुत्तु जायउ रमणी ॥
गंग प्रवाहिउ रयण माहि घालिउ, मंजूस
कीजइ पातकु पुण्यवंति कइ लाज कि रीसं ॥
जाणीउ राइं कुंतिचितु पंडु जु परिणावइ
लिहिउं जासु निलाडि जाम तं मुंजु आवइ ॥

॥ वस्तु ॥

सवलु नरवरु सवलु नरवरु देसि गंधारि
कुंयरि तसु तणए आठ धीय गंधारि पहिलीय
कुलदेवलिआईसि धायरट्ठ नरनाह दिन्हीय
देवकनरदइं नंदणी कुमुइणि विदुरकुमारि
बीजी मद्रकि मद्रभूय पंडुतणइ वरनारि ॥
गभु धरीऊ गभु धरीऊ देवि गंधारि
दुट्ठत्तणि डोहलऊ कूड कलहि जण झुझि गज्जइ
पुरपवेसि गइंवरि चडई सुहड जेम मनि समरु सज्जइ
गानि रडंता वंदीयण पेखीउ हरिखु करेइ
सासु ससरा कुणवि सुं अहनिसि कलहु करेइ ॥

[ ठवणि ॥ ३ ॥ ]

पुन्नप्रभाविहिं पामीयउ पहिलुं कुंतादेवि
पुन्नमणोरहु पूत्त पुण सुमिणां पंच लहेवि ॥
दीठउ सुरगिरि क्षीरहरो सुमिणइ सिरिरविचंद

(204) MS. has प्रभाति for प्रभावि.
(112) गंधारिक in MS. for गंधारि,

जनमि युधिष्ठिरराय तणइ मिलीया सुरवइविंद ॥
गयणंगणि वाणी पडीय 'खमि दमि संजमि एकु
धरगपूतु जगि ऊपनउ सत्यसोलि सुविवेकु' ॥
रोपीउ पवणिहिं कलपतरो सुमिणइ कुंतिदूयारि
पवणह नंदणु वज्जमओ भीमु सु भूयण मझारि ॥
त्रीसे मासे जाईयउ दूमीय देवि गंधारि
दिवसि अधुरे ऊपनओ दुर्योधनु संसारि ॥
दसह दसारह बहिनडीय त्रीजउं धरइ आधानु
'दाणव दल सवि निद्दलउं' मनि एवडु अभिमानु
'धनुपु चडावीउ भूयणि भमउं' इच्छा छइ मन माहि
वइठउ दीठउ हाथिणीयं मुरवइ मुमिणा माहि ॥
जनममहोछवु सुर करइं नाचइं अपछरवाल
दुंदुहि वाजइं गयणवले धरणिहि ताल कंसाल ॥
गयणह वाणी ऊछलीय 'अरजुन इंद्रह पूत्तु
धनुपवलि धंधोलिसीए दुरयोधन वरमूत्तु' ॥
नकुलु अनइ सहदेवु भडो जुअलइं जाया बेउ
प्रभु चंद्रप्रभु थापीयउ नासिकि कूंतीदेउ ॥
सउ वेटां धयराठवरे पंडु तणइ घरि पंच-
दुर्योधनु कउतिग करए कूडा कवडप्रपंच ॥
अन्नदिणंतरि गिरिसिहरे राजा रमलि करेइ
कुंतीकरयल अडवडिउ रडयड भीमु रुडेइ ।
पाहणि पाहणि आफलीउ बाल न दूमीउ देहु
पाहण सवि चूनउ हूयए केवडु कउतिगु एहु ।
गयणह वाणी आपीयउ आगइ वज्जसरीरु
वाधइं पंचइ चंद जिम पंडव गुणगंभीर ।

(225) गयणगणि in MS.
(234) दीठउ written twice in MS.
(238) धंधोलिसाए in MS. for धंधोलिसीए
(243) अन्ना for अन्न.
(245) पाहणि २. in MS.

भीमु भीडंतउ जमगातडे कूटइ कुरववीर
पाडइ द्रउडइ भेडवइ वांधीय वोलइ नीरि ॥
दुरयोधनु रोसिहि चडीउ वोलइ "सांभलि भीम
तुं मुझ बंधव कूटतउ म मरि अखूटइ ईम" ॥
भीमि भिडिउ भद्रु पाडीयउ वांधीउ घालिउ नीरि
जागिउं श्रोडइ बंध वलि नवि दूमिइ सरीरि ॥
विसु दीधउं दुरयोधनिहिं भीमह भोजन माहि
अमृतु हूई नइ परिणमिउ पुन्निहिं दुरिइ पुनाइ ॥
अतिरथि सारथि तहिं वसए राय तणइ घरिमूत्तु
राधा नामिहि तसु घरणि करणु भणु तसु पूत्तु ॥
सउ कूंयर पंचगलउं किवहरि पढिवा जाइं
धीरु वीरु मति आगलउं करणु पढइ तिणि ठाइ ॥
दडा लगइ गुरू भेटीउ द्रोणु सु बंभणवेसि
तेह पासि विद्या पढइ कूपगुर नइं उपदेसि ॥

॥ वस्तु ॥

तींह कूंयरह तींह कूंयरह माहि दो वीर
इकु अरजुनु आगलऊ अनइ करणु हीयइ हरालउ
गुरकूवइं विणयह लगइ धदुहवेणु दीधउ सरालउ
किसुं न हुइ गुरभगति लगइ माटि नउ गुरु किद्धु
अहनिसि गुरु आराधतउ एकलव्यु हूउ सिद्धु ॥
गुरु परिक्खइ गुरु परिक्खइ अन्नदीहंमि
दुरयोधनपमुह सवि रायकूंयर वण माहि लेविणु
सारींगुं मिल्हि करि तालरुंख सिरि लखु देविणु
तीणं परीक्षां गुर तणी पूगउ एकु जु पत्थु
राहावेहु तउ सिखवइ मच्छइ देविणु हत्थु ॥
एक वासरि एक वासरि कूंयर नइ माहि
गुरि सरिसा जलि तरइं द्रोणचलणु जलजीवि लिद्धउ
कूंयरपरीक्षा तणइ मिसि गुरिहिं कूड पोकारु किद्धउ
धायउ अरजुनु धणुहधरु अवर नधाया केइ

(259) ग्ग in पंचग्गलउ is written peculiarly in MS.

मेल्हाविउ गुरचलणु तसु गुरू किम नवि तूसिइ ॥

[ ठवणि ॥ ४ ॥ ]

गुरि वीनविउ अवसरि राउ "सविहुं बैठां करउ पसाउ
तुम्हि मंडवउ नवउ अखाडउ नव नव भंगि पूत्र रमाडउ" ॥ १ ॥
आइसु विदुरह दीधउं राइ दह दिसि जणवइ जोवा धाइं
सोवनथंभे मंच चडावइ राणो राणि ते सहू य आवइ ॥ २ ॥
पहिलउं आवइ गुरु गंगेउ धायरट्ठ धुरि बइसइं राउ
विदुर कृपा गुरु अवर नरिंद मंचि चड्या सोहइं जिम चंद ॥ ३ ॥
केवि दिखाडइं खांडा सरमु केवि तुरंगम जाणइ मरमु
चक्र छुरी किवि सावल भालइं किवि हथीयार पडंता झालई ॥ ४ ॥
पहिलुं सरमइ धरमह पूत्रो जेह रहइं नवि कोइ शत्रो
ऊठिउ भीमु गदा फेरंतउ तउ दुर्योधन भिडइ तुरंतउ ॥ ५ ॥
मनि मावीत्रह मत्सर रहीउ पाछइ अरजुनु अति गहगहीउ
भीमु दुजोहण जां वे मिलिया तां गुरनंदणि पाछा करीआ ॥ ६ ॥
गुरु ऊठाडइ अरजुनु कुमरो करणहि सरिसउं माडइ वयरो
वे भाथा विहुं खवे वहेई करयलि विसमु धणुहु धरेई ॥ ७ ॥
लोहपुरुपु छइ चक्रि भमंतउ पंच वाणि आहणइ तुरंतउ
राधावेधु करीउ दिखाडइ तिसउ न कोई तीणि अखाडइ ॥ ८ ॥
तीछे हूंकी ऊठइ करणु 'अरजुनु पामइ मूं करि मरणु'
रोसि ऊठइं वेउ भूझेवा रणरसु जोइं देवी देवा ॥ ९ ॥
वेउ हूंफइं वेउ वाकरवाइं राय तणा मनि रीझु ऊपाइं
धरणि धसक्कइ गाजइ गयणु हारिइ जीतइ जयजयवयणु ॥ १० ॥
हीयां ध्रसक्कइं कायर लोक संत तणां मन करइं सशोक
जाणे वीज पडि (अ) अकालि जाणे मुंद्र खुभ्या कलिकालि ॥ ११ ॥
क्षणि नान्हा क्षणि मोटा दीसइं माहोमाहि खुसए' वेउ रीसइं
बंधवि वींटीउ राउ दुजोहणु चिहुंपंडवि वींटीउ द्रोणु ॥ १२ ॥

---

(281) मत्स in MS. for मत्सर.
(297) जयवयणु in MS. for जयजयवयणु.
(300) रीसं in MS. रीसइं.

किसुं पहूतउ द्वापरि प्रलउ ईंह लगइ कइ अम्ह वरि विलउ
अरजुन बोलइ "रे अकुलीन, अरजुन भूंझिसि मइं सुं हीन ॥ १३ ॥

अरजुन सरसी भेडि न कीजइ नियकुलमानि गरवु वहीजइ
इम आपणपुं घणुं वखाण बोलिन नीयकुल तणुं प्रमाणु ॥ १४ ॥

इम अरोडिउ तपि जा करणु पुरुष पराभवि साद मरणु
दुरजोधनि तउ पखउ करीजइ "वीराचारि कुलु जाणीजइ" ॥ १५ ॥

एतइं अतिरथि सारथि आवइ करण तणुं कुलु राउ जणावइ
"मइं गंगा ऊगमतइ दीस लाधी रतनभरी मंजुस ॥ १६ ॥

कुंडल सरिसउ लाधउ बालो रंकु लहइ जिमरयण भमालो
तिणि दिणि दीठउ सुमिणइ सूरो अम्ह वरि अविउ पुत्रह पूरो ॥ १७ ॥

कान हेठि करु करिउ जु सूतउ तउ अम्हि कहीयइ करणु निरुत्तउ"
इसीय वात मन भीतरि जाणी गूझू न कहीउ कूंती राणी ॥ १८ ॥

करणु दुजोहणु बेई मित्र पंचह पंडव केरा शत्र
तसु दीधुं सइ कूयरं राजो सो संग्रहीइ जिणि हुइ काजो ॥ १९ ॥

द्रोणगुरिं भूभतां वारी बेउ बेटा बहुमानि भारी
ईम परीक्षा हुई अखाडइ दीछे अरजुन चडीउ पवाडइ ॥ २० ॥

॥ वस्तु ॥

अन्नवासरि अन्नवासरि रायअसथानि
परिवारि सुं अछइं ताम दूतु पोलि, पहूतऊ
पडिहारिहिं वीनविउ लहीउ मानु चाउरि वइट्ठऊ
पय पणमी इम वीनवइ "द्रुपदनरिंदह धीय
परणउ कोई नरपवरराहावेहु करीउ ॥

द्रुपदरायह द्रुपदरायह तणी कूंयारि
तसु रुपह जामलिहिं त्रिहुं भूयणि कइ नारि नत्थीय
पाधारउ कुमरि सहीय आठ चक्र छइं थंमि थंभीय
तींह मति वि पूतली फिरइं स सृष्टि संहारि

(306) तपि in MS. तपि.

(315) स in सइ and जो in काम्रो are moth-eaten in MS.

तासु नयण वेही करी परिणउ द्रुपदि नारि'' ॥
[ ठवणि ॥ ५ ॥ ]

पंडु नरेसरो सइंवरि जाइ हथिणाउरपुर संचरए
आइं दले सरिसा कूंयर लेउ तारे सुं जिम चांदुलउ ए ॥
वाजीय त्रंबक गुहिर नीसाण दिणयरो रेणिहि छाईउ ए
पहूतउ जाणीउ पंडु नरिदु द्रुपदु पहूचए सामहो ए ॥
तलीया तोरण वंदरवाल नयरु उलोचिहि छाईउं ए
मणिमय पूतली सोवनथंभ मोतीय चउक पूराविया ए ॥
कंकूय चंदणि छडउ दिवारि घरि घरि तोरण ऊभीयां ए
नयरि पइसारउ पंडु नरिद किरि अमराउरि अवतरी ए ॥
पोलि पहूतउ पंडु तेजि तरणि पयंडु
सीसि चमर वंबाल अनु कंठि कुसुमह माल ॥
अनु कंठि कुसुमह माल किरि सुं मयणि आपणि आवीइ
कोइ इंदु चंदु नरिंदु सइंवरि पहुतु इम संभावीयइ ॥
चडीउ चंचलि नयणि निरखइं वयणु वोलइं सउं सही
'पंच पंडव सहितु पहूतु तउ पंडु नरवरु हुइ सही' ॥
मिलिया सुरवए कोडि तेत्रीस गयणे दुंदुहि अहहहीय
मेडे वइठला रायकूंयार आवए कूंयरि द्रूपदीय
सीसि कचुंवरि कुसुमह खूंपु कानि कनेउर झलहलइं ए
नयण सलूणीय काजलरेह तिलउ कसतूरी यम णिवडीय
करयले कंकण मणि झमकारु जादर फालीय पहिरण ए
अहर तंवोलीय द्रूपसी वाल पाए नेउर रुणझुणइं ए
भाईय वयणिहि राधावेधु नरवर साधइं सवि भला ए
कुणिहिं न साधीउ पंडु आएसि अरजुनु ऊठइ नरनीउ ए

(327) After this line MS. २ ॥छ॥ indicatiing the number of the second Vastu acd the close of the sectiom. Jain MSS. express the close by ॥छ॥
(330) MS. has जाईउ for छाईउ.
(335) MS. has किंरि for किरि.
(341) A the end of the line ॥१
(349) MS. has only नरनरीउ and not नरनरीउए; at the end of the line there is ॥२

'अति धणुह जूनु एहु तूय सामि ; सवलु देहु'
इम भणी रहिउ भीमु 'सो धनुपु नामइ कीमु'
सो धनुपु नामइ कीमु काटकि धरणि आसकि घडहडी
वंभंड खंड विखंड थाइ कि सग्गि सयल वि रडवडी
झलहलीय सायर सत्त सुरगिरि शृंग शृंगि खडखडी
खणु एकु असरणु हूउ तिहूयणु राय सयल वि धरहडी
एतइ हूयउ जयजयकारु सुर पन्नग सवि हरखीया ए
धनु धनु रायह द्रुपदधीय जीणि असंभम वर वरिया ए
धनु धनु राणीय कुंतादेवि जसु कूहिहि ए ऊपना ए
पंचम गति रहइ अवतर्या पंच पंचवाणं जिसा जगि हूया ए
पांचइ गाईय सुर सुरलोकि सुर वए सिरु धूणाविया ए
महीयले महिलीय करइ विचारु "कवणु कीउ तपु द्रूपदीय
कोइ न त्रिहू जगि हूईय नारि हिव पछी कोइ न होइसि ए
एक महेलीय पंच भतार सतीय सिरोमणि गाई ए ॥
राधावेधु सु अरजुनि साधिउ मनचींतिउ वरु लाडीय लाधउ
जां मेम्हि गलि अरजुन माल दीसइ पांचह, गलि समकाल
राइ, युधिष्ठिरि मनि लाजीजइ तिणि खणि चारणि मुनि बोलीजइ
"निसुणउ लाडीय तपह प्रमाणु पूरविलइ भवि कियउ नियाणु
भवि पहिलेरइ बंभणि हूंती कडुउ तूंबु मुणिवर दित्ती
नरग सही वलि साहूणि हूई पांचह पुरिस प नियाणु धरेई
एहु न कोईय करउ विचार द्रूपदराणीयपंच भतार"
साहू कही नइ गयणि पहूतउ पंडु नराहिवु हूयउ सयंतउ
अच्छवि दीजइ मंगल चार जगि सचराचरि जयजयकार
लाडीय कोटं कुसुमह माल लाडइय लोचन अति अणीयाला
लाडीय नयणे काजलरेह सहजिहि लाडण सोवनदेह
कुंती मद्रीय मायइ मउड धनु धनु पंडव द्रूपदि जोड
पंचइ पंडव वइठा चउरी नरवइ आसातल्यरु मउरी

---

(352) कीम in MS. for कीमु.

(355) धरडी in MS. for धरहडी.

(370) कोईयरउ in MS. for कोईय करउ.

(376) At the end of this line there is in MS. ठवणी instead of वस्तु.

॥ वस्तु ॥

पंच पंडव पंच पंडव देवि परिणेवि
सउं परिवारिहिं सुं दलिहिं हस्तिनागपुरि नगरि आवइं
अन्नदिवसि रिषि नारदह नारि कज्जि आदेसु पामई
समयधम्मु जो लंघिसिइ तीण पुरपि वनवासि
वार वरिस वसिवुं अवसि अहनिसि तीरथवासि ॥
सच्च कज्जिहिं सच्च कज्जिहिं अन्न दीहंमि
उल्लंघिउ गुरुवयणु इंदपुत्तु वनवासि चल्लई
गिरि वेयड्ढह तलि गयऊ पणमिउ नामि मल्हारु
निव मणि चूडह राजु दिइ पहिलउ उपकारु ॥
वार वरिसह वार वरिसह चडिउ विमाणि
अट्ठावयपमुह सवि नमीय तित्य जां वरि पहुच्चई
मणिचूडह मित्तह भयणि राउ एकु परिहरीउ वच्चई
गहीय पभावइ रिउ हणिउ मंजिउमारग कूडु
धरि पहूतउ वेउ मित्त लेउ हेमंगडु मणिचूडु ॥

[ ठवणि ॥ ६ ॥ ]

एतलं ए पंडु नरिंदो जूठिलो पाटि प्रतीठिउ ए
बंधवि ए विजयु करेवि राय सवे वसि आणीया ए
सोवन ए रासि करेवि बंधव आगलिउ गिणं ए
मित्तह ए रईय मणिचूड राय रहइं सभा रयणम ए
राइहिं ए संति जिणंद नवउ प्रासादु करावीउ ए
कंचण ए मणिमय थंम रयणमड बिंब भरावीयां ए
तेडीउ ए देवु मुरारि राउ दुरयोधनु आवीउ ए
इछीय ए दीजइं दान बिंबप्रतिष्ठा नीपजं ए
वरतीय ए देसि अमारि ऊरिण कीधी मेदिनी ए
हसिऊ ए सभा मझारि राउ दुरयोधनु पराभवी ए

(381) धरिस in MS. for वरिस.

(383–384) Betweec these two lines there ought to be one more line rhyming with चल्लई-according to the formation of the Vastu metre.

माउलं ए सरिसउ मंत्रु तायह श्रम आगलि वीनवं ए
वारिउ ए विदुरि ताएण वयणु न मानइ कूडीउ ए
आणीय ए सभामिसेण पंडव पंचइ राट सउ ए
कूडिहि ए दीजइ मान वयरिहि मांडइ जूवटउ ए
राखिउ ए राउ जूठिलु विदुरह वयणु न मानीउं ए
हारीयां ए हाथियं थाट भाईय हारीय राजि सउं ए
हारीय ए द्रुपदह धीय ऊदानिव नवि आमरण ए
ताणीय ए केसि धरेवि देवि दुसासणि दूजणिहि ए
आणीय ए सभामझारि दुरीय दुर्योधन इम भणं ए
"आविन ए आवि उत्संगि द्रुपदि वइसिन मुझ तणां ए"
इम भणी ए दियइ सरापु 'र [ – ] हुजे तुं कुन्नि सउं ए
कुपीय ए काडवी चीरु अट्ठोत्तर सउ साडीय ए
उठीय ए गुरु गंगेउ कुणवि दुरयोधनु ताजिउ ए
तउ भणं ए "पंडव पंच वयणु महाराउ पडिवजुं ए
बारह ए वरस वणवासु नाठे हींडिवुं तेरमई ए
अम्हि किम ए जाणिसुं तुहितउ वनवासु जु तेतलु ए
पंडव ए लियइं वणवासु सरसीय छट्ठीय द्रूपदीय

॥ वस्तु ॥

हैय दैवह हैय दैवह दुट्ठ परिणामु
पियं पंचह पेखतां द्रुपदवीय कडिचीरु कड्ढीय
द्रोण विदुर गंगेय गुरा न हल्लि कोहग्गि दड्ढीय
अम आसमुद्द धरहि धणिय इक्केक्कइं कडिचीरि
हाकीउ रल जिम काढीइंउ आयमतई सूरि ॥

[ ठवणि ॥ ७ ॥ ]

अह देवह वसि तेवि पंच ए पंडव वणि चलिय
हथिणउरि जाएवि मुकलावइं निय माय पीय ॥ १ ॥
पय पणमीय निय ताय कुंती मद्री पय नमीय

---

(401) MS. has वीनव for वीनवं.
(409–410) भणं तणं; the final Anusvara dot is omitted at several places in the MS. See also 401 above.
(412) MS. has काडवीरु for काडवी चीरु.

सच्च वयण निरवाहु करिवा काणणि संचरइं ॥ २ ॥
लेई नियं हथियार द्रोण पियमहि अणगमीय
कुंतादिवि भरतार नयण नीर नीझर झरइं ए ॥ ३ ॥
सच्चवई पिय माय अंबा अंबाली अंविका
कुंती मुद्री जाइ वउलावेवा नंदणह ॥ ४ ॥
पभणइ जूठिलु राउ "माइ म अरणइ तुहि करउ
निय घरि पाछां जायउ लोकु सहूयइ राहवउ ॥ ५ ॥
दाणवि कूरि कमीरि पंचाली वीहावीयउ
भूझिउ मारीउ वीरू भीमिहिं तु दुरयोधनह ॥ ६ ॥
तउ वनि कामुकि जाइं पंचह पंडव कुणवि सउं
मंत्रह तणइ उपाइ अरजुनु आणइ रसवती य ॥ ७ ॥
पणमीयतायह पाय पाछउ वाळीउ मद्रिं सउं
विद्या वुद्धि उपाइ आपीय पहुतउ पीत्रीयउ ॥ ८ ॥
पंचाली नउ भाउ पंच पंचाल लेउ गिउ
एतंइं केसवु राउ कुंती मिलिवा आवीयउ ॥ ९ ॥
वलु वोलीउ वलवंधु सुभद्रा लेई सांचरए
हिव पुणु हूउ निवंधु कुंती थुं सरसा सात ज ए ॥ १० ॥
एहु तु पुरोचन नामि पुरोहितु दुर्योधनह
"तुम्हि वीनविया सामि राय सुयोधनि पय नमीय ॥ ११ ॥
मइं मूरखि अजाणि अविणउ कीधउ तुम्हा रहइं
मूं मोटी मुहकाणि तुम्हं खमउ अवराहु मुह ॥ १२ ॥
पाधारिसिउ म रानि वारणवति पुरि रहण करउ
ताय तणइ वहुमानि हुं अराधिसु तुम्ह पय" ॥ १३ ॥
कूडु करी तिणि विप्रि वारणवति पुरि आणीया ए
किसुं न कीजइ शत्रि अवसरि लावइ परभवह ॥ १४ ॥
विदुरि पवाचिउ लेखु "दुरयोधनु मन वोसिसउं
एसु पुरोहितवेषु कालु तुम्हारउ जाणिजउ ॥ १५ ॥

---

(443) MS. reads मामि for नामि.
(451) In MS. पवाचिउ might also be read पवाडिउ (caused to be read) ro पवाविउ which has no sense.

इंह घरि अछइ मंत्रु लाख तणउं छइ धवलहरो
माहि पउढाडउ शत्र एकसरा सवि संहरउं ॥ १६ ॥
काली चऊदसि दीहु तुम्हे रूडइं जोइजउ
एउ दुरयोधनु सीहु आइ उ पाइं मारिसिए" ॥ १७ ॥
भीमु भणइ "सुणि भाय वारउ वयरी वाधतउ
कुलह कुलंछणु जाइ एकि सुयोधनि संहरीइं" ॥ १८ ॥
सगरिहिं खणीय सुरंग विदुरि दिवारीय दूर लगइ
हुं ऊगारउं अंग ईण ऊपाइं पंडवह ॥ १९ ॥
इकि डोकरि तिणि दीसि पांच्र पूत्र इकि वहूय सउं
कुंती नइ आवासि वटेवाहूं वीसमियां ॥ २० ॥
राति चालइ राउ मागि सुरंगह कुणवि सउं
दियइ पुरोहितु दाउ लाखहरइं विसनरु ठवइ ॥ २१ ॥
साथीउ पच्छेवाणु भीमि पुरोहितु लाखहरे
मेल्हीउ दीधु पीयाणु केडइ आवी पुणु मिलए ॥ २२ ॥
हरखीउ कउरवु राउ देखी दाधां माणुसहं
जोयउ पुन्नपभाउ पंडव जीवी उगरए ॥ २३ ॥

॥ वस्तु ॥

देवु न गिणई देवु न गिणई पुण्यु नइ पापु
संतापु सुयणह करई पुण्यहीन जिम राय रोलई
दारिद्र दुक्खु केह भरई तृणा कज्जि गिरि सिहरु ढोलई
जोइ मग्गि निसंवला पंचइ पंडव जंति
राजु छंडाव्या वणि फिरइं धिगु धिगु दूख सहंति ॥

[ ठवणि ॥ ८ ॥ ]

धिगु रि धिगु रि धिग दैवविनासु पंचह पंडव हुइ वणवासु
उतइं लाखहरु परिजलइ उंतइं भीमु जु केडइ मिलीइ ॥ १ ॥
राति खुडत पडंता जाइं वयरी ने मइ वेगि पुलाइं
ते जीवंतां जाणइ किमइ कूडु नवउं तउ मांडइ तिमइ ॥ २ ॥

(471) दुक्खु has its खु not written in the MS.; क्खु is supplied as it suits the context aptly.
(472) MS. has जेइ for जोइ.

सासू वहूय न चालइ पाउ ऊभउ न रहइ जूठिलु राउ
माडी वोलइ "सांभलि भीम केती भुइं वयरी नी सीम ॥ ३ ॥
इकि वयरी ना परिभव सह्या लहूया नंदण पाछलि रह्या
हूं थाकी अनु थाकी वहू दिणु ऊगिउ तऊ मरिसइ सहू" ॥ ४ ॥
वांसइ वाधा वंधव वेउ माडी महिली कंधि करेउ
तरुयर मोडतु चालिउ भीमु दैव तणुं वलु दलीइ ईम ॥ ५ ॥
एकं वाहं साहिउ राउ वीजी साहिउ लहुडउ भाउ
जां महिमंडलि ऊगिउ सूरु तां वणि पहुतउ पंडव वीरु ॥ ६ ॥
सहू पराघुं निद्रा करीइ पाणी कारणि वणि वणि फिरइ
भीमु जाम लेउ आवइ नीरु पाछलि जोअइ साहसधीरु ॥ ७ ॥
एक असंभम देखइ वाल पहिलुं दीठी अति विकराल
वोलइ राखसि "सांभलि सामि हुं जि हिडंवा कहीउं नामि ॥ ८ ॥
राखस हिडंव तणी हूं धूय तइं दीठइं मयणातुर हूय
वइठउ ताउ अछइ नीय ठाणि वाइं आवी माणुसहाणि ॥ ९ ॥
मुझ रहिं आइसु दीधुं इसुं 'कांई आव्युं छइ माणसुं'
कांधि करी लेउ वहिली आवि उपवासी मइं पारणुं करावि ॥ १० ॥
कर जोडी हुं पणमउं पाय मइं तुम्हि परणउ पांडवराय
तुम्ह उपकार करिसु हुं घणा दूख दलिसु वणवासह तणा" ॥ ११ ॥
"उभी उभी इसुं म वोलिइं पंडव वीजां मणूअ म तोलि
जग उद्धसिवा घर अवतरइं रूठा जगनुं जीवीउ हरइं ॥ १२ ॥
ए माडी ए अम्ह घर नारि ए अम्ह वंधव सूता च्यारि
ईह तणे तूं चलणे लागि भगति करी सनवंछितु मागि ॥ १३ ॥
एतइं राखसु रोसि जलंतु आवइ फुड फेकार करंतु
वेटी वूसट मारइ जाम पीमु भिडेवा ऊठिउ ताम ॥ १४ ॥
"रे राखस मुझ आगलि वाल मारिसि तउ तूं पूगउ कालु
रूंख ऊपाडी वेई विढइं दह दिसि वाजइं डूंगर रढइं ॥ १५ ॥

---

(488) MS. has वल for वाल.
(495) MS. has दूप instead of दूष—दूख.
(500) The MS. has रेसि for रोसि.
(501) In MS. वूसट—a light word—reads like लूसठ.

चलणनिहाइं जागिउं सहू पणमी वोलइ हिडंवा वहू
"माइ माइ ऊठाडउ राउ ए रूठउ अम्हारउ ताउ ॥ १६ ॥
इणि मारीसइ मुहतु भिडंतु वीजउ कोई धाउ तुरंतु"
इसु सुणी नइं धायउ पत्थु झूझइ भीम मिलिउ भडसत्थु ॥ १७ ॥
पडिउ भीमु आसासिउ राइ गदा लेउ वलि साम्हउ थाइ
अरजुनु जां झूझेवा जाइ राखसु भीमि रहाविउ ठाइ ॥ १८ ॥

॥ वस्तु ॥

अह हिडंवा अह हिडंवा सतिय चल्लेइ
कुंती अनु द्रौपदी अ कंधि करीउ मारगि चलावइ
कुंती जल विणु तूंछीइ तहि हिडंव जलु लेउ आवइ
एकु दिवसु वण जोयती भोलाटी पंचालि
जोई जोई ऊसना पंडव वणि विकरालि ॥ १६ ॥

[ ठवणि ॥ ९ ॥ ]

वाघ सीह गज द्रेठि पडइ सतीय सयरि ते नवि आभिडइं
राति पडंति पंडव रडइं वलि वलि मूंछी भूमि पडइ ॥ २० ॥
राखसि धाई गाहिउं रानु आणी द्रूपदि लाधूं मानु
भीमसेन गलि मेल्ही माल कुणवि मिली परिणावी वाल ॥ २१ ॥
भोजनु आणइ मारगि वहइ करइ भगति सरसी दुक्ख सहइ
नवउ अवासु करी नइ रमइ पंचह पंडव सरसी भमइ ॥ २२ ॥
एक चक्रपुरि पंडव गया देवशर्मवंभण घरि रह्या
हीडइ चालइ वंभणवेसि जिम नोलखीइं तीणं देसि ॥ २३ ॥

---

(505) The MS. has no अम्हारउ.

(514) At the end of the line the scribe not only does not conclude the ठवणि but also continues, the verse-enumeration the same as it is.

(515) The MS. not only does not note the end of the previous ठवणि but also keeps on the enumeration. We have separated the thavani but kept the stanza-enumeration as found in the MS.

राइ बोलावी बहू हिडंब "अम्हि वसीसइ वेस विडंबि
तुम्हि सिधावउ तायह राजि समरी आवे अम्हह काजि ॥ २४ ॥
करि रखवालुं थांपणि तणुं अजीउ फिरेवुं अम्हि वनि घणुं"
नमी हिडंबा पाछी जाइ वापराजि धणियाणी थाइ ॥ २५ ॥
अन्न दिवसि बंभणु संकुटंब रल जिम विलवइ पाडइ बुंब
पूछइ भीमु करी एकंतु "आविउं दूखु किसु अचिंतु ॥ २६ ॥
"वडुया सांभलि" बांभणु भणइ "ए विवहारु नयरि अम्ह तणी
विद्यासिद्धी राखसु हूउ बक नामि छइ जम नउ दूउ ॥ २७ ॥
विद्या जोवा तीणं पलासि पहिलुं सिला रची आकासि
राजा भीडी अवग्रहु लीउ "पइदिणि नरु एकेकउ दीउ ॥ २८ ॥
चीठी काढइ निनू कूंयारि आवइ वारउ जण विवहारि
आजु अम्हारइ आविउ दूउ आजु न छूटउं हुं अणमूउ ॥ २९ ॥
केवलि वयणु जु कूडउ थाइ जउ नवि आव्या पंडवराय"
पूछीउ भीमि कथा प्रबंधु वणि जाई वग राखसु रूद्धु ॥ ३० ॥

॥ वस्तु ॥

वगु विणासी वगु विणासी भीमु आवेइ
वद्धावइ जणु सयलु "जीवदानु तइ देव दिद्धउ
केवलिवयणु जु सच्चु किउ त्रिहु भुयणि जसवाउ लिद्धउ"
पंचइ पंडवडा वसइं तीछे बंभणवेसि
वात गइ जण जण मिली दुरयोधन नइ देसि ॥ ३१ ॥
राति माहे राति माहे हुई प्रच्छन्न
तउ जाइ द्वैतवणि वसइ वासि उडवा करी नइ
पुरुष प्रियंवदु पाठविउ विदुरि वात बक नी सुणी नइ
पय पणमी सो वीनवइ दुरयोधनु नु मंत्रु
"तुम्ह पासि ए आविसिइं करणु दुरयोधन शत्र ॥ ३२ ॥
ईम निसुणीउ ईम निसुणीउ भणइ पंचालि
"वणि रुलतां अम्ह रहइं अजीय शत्र सिउं मिउं करेसिइं

(540) The scribe has missed वसइं-in the MS. some such word वसइं or अछइं is metrically necessary. The sense too needs it. वसइं is therfore conjectural.

राजिसिद्धि अम्हह तणी लइय जेण हिव सिउं हरेसिइं
पंचाली मनि परिभवी वोलइ मेल्ही लाज
पांचइजण कंइ हुसिइं तुम्हि किसाइ काज ॥ ३३ ॥

माइ हूई माइ हूई काइं नवि वंभि
अह जाया नवि मूआ तुम्हे राजु कांई दैवि दिद्धउ
पुत्रवंत नारी अछइ तींह माहि तुम्हि अजसु लिद्धउ
केसि धरीनइ ताणीउं दुःशासणि दुरचारि
वालप्पणि हुं नवि मूई कांइं तुम्ह नारि" ॥ ३४ ॥

रोसु नामीउ रोसु नामीउ भोमि अनु पत्थि
राउ भणइ "तां खमउ मुझ वयणु जां अवधि पुज्जई
पंचाली रोसवसि अवसि अंति अम्ह काजु सिज्झई
सच्च वयणु मनि परिहरउ साचउं जिणधर्ममूलु
सत्यवयणि रूडु पामीइ भवसायर परकूलु" ॥ ३५ ॥

दूअवर्याणि दूअवर्याणि राउ जूठिल्लु
गिरि गंधमायण गिया इंदकीलु तसु सिहरु दिट्ठऊ
मुकलावी अरजुनु चडई नमीउ तित्थु तसु सिहरि वइट्ठऊ
विद्या सवि सिद्धिंहि गई जां पेखइ वणराइ
आहेडी आरोडीउ तां एकु सूअरु धाइ ॥ ३६ ॥

( ठवणि ॥ १० ॥ )

सूयर देखी मेल्हिउं वाणु अरजुन सिउं कुणु करइ संधाणु
तिणि खिणि मेल्हिउं वणचरि वाणु ऊडिउं गयणि हूउं अप्रमाणु ॥३७॥

अरजुन वनचर लागउ वादु करउं झूझु ऊतारउं नादु
एकसर कारणि झूझइं वेउ करइ परीक्षा ईसर देउ ॥ ३८ ॥

खूटां अर्जुन सवि हथीयार मालझूझ वेउ करइं अपार

---

(559) The MS. has सिझई for सिज्झई.

(561) The first letter of the word रूडु is moth-eaten. It might be but one cannot be certain.

(567) The MS. continues the enumeration without separating a thavani. I have separated the thevani and preserved the enumeration.

साहिउ अर्जुनि वनचरु पागि प्रकटु हुई बोलइ "वरु मागि" ॥ ३९ ॥
अर्जुनु बोलइ "वरु भंडारि पाछइ आवइ लउ उपगारि"
खेचरु बोलइ सांभलि "सामि गिरि वेयड्ढु सुणीइ नामि ॥ ४० ॥
इंद्रु अछइ रहनू पुरराउ विज्जमालि ते लहुडउ भाउ
चपलु भणी नइ काढिउ राइ रोसि चडिउ राखसपुरि जाइ ॥ ४१ ॥
इंद्रवयणु इकु तुम्हि सांभलउ करीउ पसाउ नइ दाणव दल"
हरखिउ अरजुनु जां रथि चडिउ दाणवघरि बुंबारवु पडिउ ॥ ४२ ॥
असुरं विणासी किउ उपगारु इंद्रि लोकि हूउ जयजयकारु
इंद्र तणुं ए कीधुं काजु असुर विणासी लीधउं राजु ॥ ४३ ॥
कवच मउड अनइ हथीयार इंद्रि आप्यां तिहूयणि सार
धनुषवेदु चित्रंगदि दीउ पुत्रु भणी इंद्रि परठीउ ॥ ४४ ॥
पाछउ आवइ चडीउ विमाणि माडी बंधव पणमइ रानि
एतइं कमलु अगासह पडीउं बइठी द्रूपदि करयलि चडिउं ॥ ४५ ॥
सवां कमल नी इच्छा करइ भीमसेनु तउ वनि वनि फिरइ
असउणा देखी बोलइ राउ भीम पासि वछेदिइं जाउ ॥ ४६ ॥
माग न जाणइ खीजिउं सहू समरी राइ हिडंबा वहू
कुणबु ऊपाडी मेलिउं भीम जाखे दूखह आवी सीम ॥ ४७ ॥
मुखु देखी सवि घडुया तणु पंडव कूंयरु लडावइं घणुं
जाम हिडंबा पाछी गई वात अपूरव तां इकहुई ॥ ४८ ॥
द्रूपदि वयणि सरोवर माहि पइठउ भीमु भलेरइ ठाइ
भीमु न दीसइ वलतउ किमइ तउ झंपावइ अरजुन तिमइ ॥ ४९ ॥
केडइ नकुलु अनइ सहदेउ पाणी बूडा तेई बेउ
माइ मोकलावी पइठउ राउ सविहु हूउ एकु जु ठाउ ॥ ५० ॥
कांइ रोउं न लहइ रानि द्रूपदि कूंती रही वे ध्यानि
मनह माहि समरइं नवकारु 'एहु मंत्रु अम्ह करिसि सार' ॥ ५१ ॥
बीजा दिवसह दिणयर उदइ ध्यान प्रभावि आव्या सइ

(575) भाउ is not in the MS.
(589) The MS. has खु to which some reader has added मु, thus making up मुखु.
(592) The MS. has वलउ, metrically it ought to be वलतउ.

अछइ सोवन्नीकांवज हाथि एकु पुरुषु आविउ छइ साथि ॥ ५२ ॥
माइ नमी मनि हरिखु धरिउ पुरुप पासि कहावइं चरीउ
एक मुनि पामइं केवलज्ञानु गयणि पहूचइ इंद्र विमानु ॥ ५३ ॥
तुम्ह ऊपरि खलहिउ जाम जाणी सुरवइ वोलउं ताम
हुं पाठविउ वेगि पडिहारु जईअ पयालिकीउ उपगारु ॥ ५४ ॥
सतीय वेउ छइं कासगि रही इंद्रह आइसु तु अम्ह कही
मेल्हउ पंडव वडइ वछेदि विणु हथियारह वांधा भेदि ॥ ५५ ॥

॥ वस्तु ॥

नागपासह वंध नागपासह वंध छोडिवि
इंद्राइसि पंडवह नागराइ निजराजु दिद्धउ
हारु समोपीउ नरवरह सतीय रेसि अनु कमलु लिद्धऊ
अरजुन संगति भूझतां संपचूड सानिद्धु
मागीउ आवी तुम्ह पय पंचइ विद्या सिद्ध" ॥ ५६ ॥
वरसि छडइ वरसि छडइ द्वैतवणि जाइं
दुज्जोहण घर वरणि सामि सिक्ख रडतीय मग्गइ
धम्मपुत्त वयणेण पुण इंदपुत्तु तिणि मग्गि लग्गइ
दुरयोधन चित्रंगदह मेल्हावी उहिं पत्थि
विज्जाहररायहं नमइं दुरयोधनु लेउ सत्थि ॥ ५७ ॥

( ठवणि ॥ ११ ॥ )

तांड ऊपाडिउ वालिउ पाइ पूछिउं कुसलु युधिष्ठिरि राइ
भणइ दुरयोधनु "अतिअ सुखीया तुम्ह पाय जउ मइं पणमीया ॥ ५८ ॥
घर ऊपरि दुरयोधनु चलइ एतइं जयद्रथ पाछउ वलइ
निउंत्रीउ कूंती रहिउ सोइ अरजुनि आणी मंत्र रसोइ ॥ ५९ ॥
लोचन वंची कूड करेउ चालिउ पापी द्रूपदि लेउ
अर्जुनु भीमु भिडया भड वेउ कटकु विणासिउं द्रूपदि लेउ ॥ ६० ॥
पांचे पाटे भद्रिउं (....) भीमि भिडी ऊपाडी रीस

---

(599) MS. धरेउ for धरिउ.
(606) The line is metrically defective.
(621) This line is very corrupt. Metrically it seems ❋

नवि मारिउ छइ माडी वयणि जिम नवि दीसइ रांडी भयणि ॥ ६१ ॥

एतइं नारदु रिषि आवेऊ दुर्योधन सुं मंत्रु करेउ
नगर माहि वज्जाविउ पडहू बोलिउ दूजणु इम पडवडहु ॥ ६२ ॥
"पंचह पंडव करइ विणासु तेह तणी हुं पुरुं आस"
पूत्रु पुरोहित नउ इम भणइ "कृत्या नउ वरु छइ अम्ह तणइ ॥ ६३ ॥
कृत्या पासि करावुं कामु वयरी नुं हुं फेडउं ठामु"
कृत्या आवी धाई 'सकल कइ मारुं कइ करुं विकल' ॥ ६४ ॥
नारदु पहुतउ सिख्या देवि पंडव वइठा ध्यानु धरेवि
एकं पाइं दिणयर द्रेठि हीयडइ मंत्रु पंच परमेठि ॥ ६५ ॥
दिवस सात जां इण परि जाइं तां अच्चभू को रणवाइं
एतइं आविउं कटकु अपारु पंडव धाया लेई हथीयार ॥ ६६ ॥
घोडइ घाली द्रूपदि देवि साटे मारइं कटकु मिलेवि
अरजुनि जामुं दलु निरदलुं राय तणुं तां सूकउं गलुं ॥ ६७ ॥
कृत्रिम सरवरि पाणी पीइं पांचइ पुहवी तलि मूंछीयइं
सरवर पालि द्रूपदि मिली एकि पुलिंदइं आणी वली ॥ ६८ ॥
कृत्या राखसि तणीय जि सही भोलि वाली ऊभी रही
मणि माला नुं पाया नीरु पांचइ हूया प्रकटसरीर ॥ ६९ ॥

॥ वस्तु ॥

पंच पंडव पंच पंडव चित्ति चितंति
कुणु नरवरु आवीऊ कुणि तलावि विसनीरु निम्मिउ
कुणि द्रूपदि अपहरीय कुणि पुलिंदि, इम चित्ति विम्हिउ
अमरु एकु पयडउ हूउ बोलइ "सांभलि णाह
ए माया सवि मइं करी कृत्या राखेवाह" ॥ ७० ॥
एतइं भोजनवेला हुई द्रूपदि देवि करइ रसवई

---

※ two letters or 3 Matras, rhyming with रीस seem wanting. Again the MS. has नवि मरि repeated dofore नवि मारिउ of line 622, obviously the scribe's mistake.

(634) Two letters सूक and सूकउं are moth-eaten and hence conjuctural.

(644) MS. has सवई instead of रसवई.

मासखमणपारणइ मुणिंद वेलां पहुतउ वारि नरिंद ॥ ७१ ॥
पंचइ पंडव पय पणमंति अतिथिदानु ते मुनिवर दित
वाजी दुंदुहि अनु डुडडुडी अंबर हूती वाचा पडी ॥ ७१ ॥
मत्स्यदेसि जाई नइ रमउ ए तेरमउ वरसु नीगमउ
ग्या वइराटह राय असथानि वेस विडंव्या नीय अभिमानि ॥ ७३ ॥
कंक भट्टु वल्लवु सूआरू अरजुनु हूउ कीवाचारू
चउथउ नकुलु असंधउ थाइ सहदे वारइ नरवइ गाइ ॥ ७४ ॥
प्रथम पवाडइं कीचक मरइं वीजइ दक्षिणगोग्रहु करइं
त्रीजउ उत्तरगोग्रहु हूउ पंडवि वरसु इस परि गमिउ ॥ ७५ ॥
अभिवनु उत्तरकूंयरि वरिउ आवी कृष्णि वीवाहु सु करिउ
पहुतउं सहूइ कन्हडपुरि च्यारि कन्न चिहु पंडव वरो ॥ ७६ ॥

॥ वस्तु ॥

दूयभावि दूयभावि गयउ गोवालु
"दुजोहण वयणु सुणि एक वारमह भणिउ किज्जई
नियं अवधि आवीया पंडवाह वहु मानु दिज्जई
इंदपत्थु तिलपत्थु पुरु वारणु किसी च्यारि
हस्तिनागपुरु पांचमुं आपीउ मत्सरु वारि" ॥ ७७ ॥
भणइ कुरवु भणइ कुरवु "देव गोविंद
मह महीयलि वणि फिरिया एहु मनु पंडव न मानइ
भुइं लद्धी भूयवलिं एक चास हिव ए न पामइं
इक्क महिलीपंच जण तीहं मिलिउं तुं पक्खि
ए उग्रहाणउ सच्चु किउ 'कूडउ कूडा सक्खि' ॥ ७८ ॥
कन्हु वोलइ कन्हु वोलइ "भीमवलु जोइ
विसखप्पर कीचका वकु हिडुंवु कमीरु मारिउ
लहु वयवि अर्जुनि दुन्नि वार तुह जीउ ऊगारिउ
विदुरि कृपागुरि द्रोणि मइं जउ न मिलइं ए राय

---

(656) The enumeration of these वस्तु st. is begun afresh in the MS. naming st. 77 as st. 1. While the st. 81 is then marked as st. 82 and the last st. 82 as st. 83.

तउ जाणु नियकुल नु हिव कउरव नु घरू जाइ" ॥ ७९ ॥

पंडु पुच्छीउ पंडु पुच्छीउ विदुरि घरि कन्हु
रोसारुणु चल्लीयउ मग्गि मिलीउ सहूइ नावइ
"दुरयोधनु दुट्ठमणु किम इव देव अम्ह सलि न आवइ
हिव एकु अम्ह मानु दियउ विहुं पखउ तु छंडि
कउरववंस विणासिवा कांई कूड्ड म मांडि" ॥ ८० ॥

मानु दिन्हउ मानु दिन्हउ कन्ह गंगेय
एकंतु करि अखीउ कन्न गुभु कुंती पयासीउ
"ईह सतिय काइं तु मिलिउ जोइ जोइ तु मनि विमासीउ"
करणु भणइ "सच्चु कहउ पुणू छह एकु वि नाणू
दुरयोधन रहिं आपणा मइं कल्पा छइं प्राण" ॥ ८१ ॥

भणइ कन्हडु भणइ कन्हडु "कन्न जाणेजि
नवि मानिउ तुम्हि हुं एह वात अति हुई विरूई
अम मुझ घरि अविया पंडुपुत्र इह वात गरूई
दुरयोधनि हुं पंडवह छट्ठउ कीधउ तोइ
रथु खेडिसु अरजुन तणउ जं भावइ तं होउ" ॥ ८२ ॥

( ठवणि ॥ १३ ॥ )

व्रतु लेउ विदुरु गयउ वन माहि कन्ह वली द्वारावती जाइ
विहु पखि चालइं दल सामही विहु पखि आवइं भड गहगही ॥ ८३ ॥

जरासिंध नउ आविउ दूउ कालकुमरु जंई लग्गइ मूउ
वणिजारा नी वात सांभली जरासिंधु आवइ तुम्ह भणी ॥ ८४ ॥

उत्सव माहे उत्सवु एहु सविहुं वयरी आव्यो छेहु

---

(670) The MS. has निकुलनु for नियकुलनु.

(685) MS. gives up its enumeration of ठवणि from the VIII. If it had kept it up, following its practice upto that point, it is probably that it would have placed the end of ठवणि IX at st. 22, of the X at st. 36, the XI at st. 57, of the XII at st. 70 and at st. 82 of the XIII. This is one of the many points which another MS. of the रास if found, will help to clear up.

धर्मराय ना पणमीय पाय एतइं शल्यु सु परि दल जाइ ॥ ८५ ॥
'करण रहइं दिउ गुमाजणी' व इसी वात तिणि जातइं भणी
पांचि पंचाले लिउ सनाहु आविउ वहूउ कूंयरु अवाहु ॥ ८६ ॥
इंदचंडु अनु चंदापीडु चित्रंगदु अन्नइ मणिचूडु
आविउ उत्तरू अनु वइराहु मिलिउं वाग पंडव नउं वाहु ॥ ८७ ॥
धृष्टद्युमनु सेनानी कीउ वीजउ कन्हडदल सामह्यउ
पवित्र भूमि सरसति नइ श्रोत्रि दलु आवठउं तिणि कुरुखेत्रि ॥ ८८ ॥
कऊरव नइ दलि गुरू गंगेऊ कृपु दुरयोधनु शल्यु मिलेऊ
शकुनि दुसासणु जयद्रथु पुत्रु गरूऊ भूरिश्रवा भगदत्तु ॥ ८९ ॥
मिलीऊ जरासिंधु जादववइरि सह लगऊं एस हूइ सइरि
दुरयोधनु अति मत्सरि चडीऊ जाई जरासिंध पाए पडीऊ ॥ ९० ॥
"मुझ रहइं पहिलऊं दिउ अगेवाणु पंडव कन्ह दलऊं जिम माणु
इहा सेनानी गंगेउ प्रह विहसी जुडियां दल वेउ ॥ ९१ ॥

दल मिलीयां कलगलीय सुहड गयवर गलगलीया
धर ध्रसकीय सलवलीय सेस सगिरिवर टलटलीया।
रणवणीयां सवि संख तूर अंवरु आकंपीउ
हय गयवर खुरि खणीय रेणू ऊडीउ जगु झंपीउ।
पडइं वंध चलवलइं चिंध सींगिणि गुण सांधइं
गइंवरि गइंवरु तुरगि तुरगु राऊत रण रूंधइं।
भिडइं सहड रडवडइं सीस धड नड जिम नच्चइं
हसइं घुसइं ऊससइं वीर मेगल जिम मच्चइं।
गयघडगुड गडमडत धीर धयवड धर पाडइं
हसमसता सामंत सरसु सरसेलि दिखाडइं।
सऊ सऊ रायह दिवसि दिवसि गंगेऊ विणासइ
तऊ आठमइ दिवसि कन्हु मन माहि विमासइ।
मेल्हीऊ शल्लिहि सकति कूंअरु ऊतरु रणू पाडीऊ

---

(703) This stanza is numbered 92 in the MS. and there is ॥छ॥ showing the close of the metre. The new metre begins thereafter and stanza-enumeration ceases.

ताम सिखंडीय तणीय बुद्धि तऊ कान्हि दिखाडीऊ।
अरजुनु पूठि सिखंडीयाह बइसी सर मंकइ
पडीऊ पीयामहु समर माहि किम अरजुनु चूकइ।
त्रिगवी सरू रहावीयऊ सरि गंगा आणी
कऊतिगु दाखीऊ कऊरवांह पीऊ पायु पाणी।
इग्यारमइ दिवसि दोणि ऊठवणी कीजइ
आजु अपंडवु कइ अदोणू इम मनि चींतीजइ।
काहल कलयल ढक्क बूक त्रंबक नीसाणा
तऊ मेल्हीऊ भगदत्ति राइ गजु करीऊ सढाणा।
चूरइ रहवइ नरकरोडि दंतूसलि डारइ
अरजुन पाखइ पंडकटकु हणतुं कुणु वारइ।
दाणव दलि जिम दडवडंतु दंती देखी नइ
घायऊ अरजुनु धसमसंतू वयरी मूंकी नइ।
दिणि आथमतइ हणिऊ हाथि हरि पंडव हरखीया
दिणि तेरमइ चक्रंव्यूहु गऊ कऊरवि मांडीय।
अर्जुनु गिऊ वनि भूझिवा तिणि अभिवनु पइसइ
मारीऊ जयदथि करीऊ भूझु तऊ अरजुनु रूसइ।
करीऊ प्रतिज्ञा चडीऊ भूमि जयदथु रणि पाडइ
भूरिश्रवा नऊ तीण समइ सरि बाहु विडारइ।
सत्यकु छेदिऊं बलिहिं सीसू तसु दिणि चऊदमइ
रीतिहिं भूझइ विसम भूझि गुरु पडइ कीमइ।
कूडऊं बोलइ धरमपूतू हथीयार छंडावइ
छेदिउं मस्तकु धृष्टद्यु मनि क्रमु सिउं न करावइ।
वार पहर तऊ चडीऊ रोसि गुरनंदणु भूझइ
रणि पाडिऊ भगदत्तु राऊ कऊरव दल मंझइ।
करि करवालु जु करीऊ करणू समहरि रणू माडइ
फारक पायक तूरग नाग नवि कोई छंडइ।
धूलि मिलीय झलमलीय सयल दिसि दिणयरू छाईऊ
गयणे दुंदुहि दमद्रमीय सूरवरिजसु गाईऊ।

(724) The MS. has ढक instead of ढक्क.

पाडइ चिंध कदंध वंध धरमंडलि रोलइ
वाणि विनाणि किवणि केवि अरीयण वंघोलइ ।
कूडु करीऊ गोविंदि देवि रथु धरणिहिं खूतऊ
मारीऊ अरजुनि करणू कूडि रणि अणकूभंतऊ ।
शल्यु शकुनि बेऊ हणीय वेगि नकुलि सहदेवि
सरवरमाहि कढावीयऊ दुरयोधनु देवि ।
राइ संनाहु समोपीयऊ भीमिहिं सू भिडेऊ
गदापहारि हणीय जांघ मनि सालु सू फेडिऊ ।
रूठऊ राम मनाविवां जां पंडव जाइं
कृपु कृतवर्म आसवामता त्रिन्हइ धाइं ।
पाछलीलि पापी करइं कूडु दीधऊ रतिवऊ
निहणीय पंच पंचाल वाल अनु राखसि जाऊ ।
सीसू शिखंडी तणऊ तासु छेदीऊ छलु साधीऊ
पाप पराभव नइ प्रवेसि गतिमागु विराधीऊ ।
कन्हडि वोधीऊ सूयण लोकु सहु सांगु निवारीउ
पहुतुं सहूइनीय नयरि परीयणि परिवारीय ।

॥ वस्तु ॥

दाघु दिन्हऊ दाघु दिन्हऊ कन्ह ऊवएसि
तहिं अरजुणि मिल्हिऊ आगिणेय सरु अगि ऊट्ठीय
वहु दुक्खु मणि चितवीय दंडसेन वण नयणि वुट्ठीय
कन्हडु सहूउ परीठवीउ कूणवि निवारी रोसु
हथिणाउरपुरि आवीया अति आणंदिऊ लोकु ॥

---

(746) वंध after कदंध is not in the MS. the addition is conjectural.

(764) क्खु in दुक्खु is moth-eaten, hence it is conjectural.

(765) The MS. has परीछवीउ for परीठवीउ.

(766) The MS. has ठवणि and not the number written in it.

( ठवणि ॥ १४ ॥ )

थापीऊ पंडव राजि कन्हडु ए उत्सवु अति करए
कूणविहिं देवि गंधारि धयरठू ए राऊ मनावीऊ ए ।
हरीयन्दा दूपदि देवि इकू दिग्गू ए नारद परिभवि ए
वेह रहइ कन्हु जाएवि सुद्रह ए माहि वाटडी ए ।
आणीय धानुकी पंडि देवीय ए अरि वसि घालीया ए
पहुतला पासि गंगेय जय तणी ए सांभलइ वातडी ए ।
ऊपनु केवलनाणु सामीय ए नेनि जिणेसरहं ए
सांभली सामि वखाणू विरता ए सावयव्रतु धरइ ए ।
वरतीय देसि अमारि नासिक ए जाईऊ जिणू नमइ ए
दिणि दिणि दीजइ दाव पूजीयं एं जिण भूयण ऊपनऊ ए ।
ऊपनऊ भवह वइरागु वेटऊ ए पीरीयखि पाटि प्रतीठिऊ ए
सामीय गणहर पासि पांचह ए हरिखिहि व्रतू लिइ ए ।
सांभली वलिभदि वात नियभवू ए पूठए पूछइं प्रभु कन्ह ए
वोलइ गुरू धर्मघोषु "पुवभवि ए पांच ए कूणवीय ए ।
वसइं ति अचलह गामि वंधव ए पांच ए भाविया ए
सूरईऊ संतुन देवु सुमतिऊ ए सुभद्र सूचांमु ए ।
सुगुरु यशोधर पासि हरिखिहिं ए पांच ए व्रतु धरए
कणगावलि तपु एकु वीजऊ ए करइ रयणावली ए ।
मुकतावलि तपु सारू चऊथऊ ए सिहनिकीलिऊ ए
पांचमु आंबिलवर्धमानु तपु तपी ए अणूत्तरि सवि गिया ए
चवीयला तुम्हि हूआ पंचइ ए भवि ए सिवपुरि पामिसऊ ए
सांभली नेमिनिरवाणु चारण ए सवणह सूणि वयणि
सेत्रुजि तीथि चडेवि पांचह ए पांडव सिद्धि गिया ए
पंडव तणाऊं चरीतू जो पढ़ए जो गुणइ संभलए

---

(772) The MS. has पसि for पासि obviously an error, the metrical final ए dropped in this line and also in lines 775, 776.
(777) The MS. has वोटउ for वेटउ.
(779) The MS. has पुछए for पुठए.

पाप तणाऊ विण तमुासु रहइ ए हेलां होइसि ए
नीपनऊ नयरि नादऊदि वच्छरी ए चऊददहोत्तर ए
तंदुलवेयालीयसूत्र माभिला ए भव अम्हि ऊधर्या ए
पुनिमपखभुणिद सालिभद ए सूरिहि नींमोऊ ए
देवचन्द्रऊपरोधि पंडव ए रासु रसाऊलु ए ॥

॥ इति पंचपंडवचरित्ररासः । समाप्तः ॥ छ ॥ १ ॥ ❀

---

(791) The MS. has पाक in thaplace of पाप

❀ (ऑरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, वड़ौदा; से प्रकाशित 'गुर्जर रासावली' से साभार)

# गौतम रास [1]

१५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पंचपाण्डव चरित रासु के पश्चात् काव्य सौष्ठव तथा कथा प्रवाह की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति गौतम रास है। भाषा, भाव, तथा काव्य इन तीनों रूपों में यह कृति अपने में पूर्ण है। ६०० वर्ष की प्राचीन रचना होने पर भी कृति का पाठ इतना अधिक लोकप्रिय है कि आज भी मारवाड़ी जैन श्रावक (खरतर गच्छीय) इसका प्रतिदिन पाठ करते हैं। रास कई वार प्रकाशित हो चुका है। सर्व प्रथम श्री नाथूराम प्रेमी [2] और पश्चात् श्री कामताप्रसाद जैन [3] ने इस कृति के महत्व पर प्रकाश डाला। डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी अपने आलोचनात्मक इतिहास में इसका उल्लेख किया था। [4] इन विद्वानों ने [5] 'उदयवन्त मुनि इम् भणे' और कहीं विजयभद्र मुनि इम भणे पाठ मिलने से रचयिता का नाम ही उदयवन्त या विजयभद्र रख दिया पर वास्तव में ऐसा नहीं है। स्वर्गीय देसाई मोहनलाल [6] तथा श्री अगरचन्द नाहटा ने [7] इस भूल का परिहार कर दिया है। रास की सं० १४३० की सवसे प्राचीन प्रति वीकानेर वड़े ज्ञान भण्डार में सुरक्षित है जिसकी पुष्पिका में:—इति श्री गौतम स्वामी रास : श्री स्तम्भ तीर्थ विहारे श्री विनय प्रभोपाध्याये कृत, पाठ मिलता है। अतः यह वहुत सम्भव है कि रास

---

१—साहित्य, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्; श्री अगरचन्द नाहटा का लेख 'गौतम रास' व उसके रचयिता पृष्ठ २-६।

२—हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास : श्री नाथूराम प्रेमी, पृष्ठ ३२। ३—वही।

४—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ० रामकुमार वर्मा, द्वि० सं० पृष्ठ १३५—१४२।

५—जैन सिद्धान्त भास्कर भाग २०, किरण २ में प्रकाशित—अपभ्रंश साहित्य पर प्रो० रामकुमार जैन का लेख।

६—जैन गुर्जर कवियो : श्री मोहनलाल देसाई भाग १ पृष्ठ १५।

७—साहित्य; विहार राष्ट्रभाषा परिषद; गौतमरास, श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।

की रचना सं० १४१२ में गौतम स्वामी के कैवल्य-ज्ञान प्राप्ति दिवस पर खंभात में श्री विजयप्रभ उपाध्याय ने की हो। कृति के पद्यों में भी अनेक पाठान्तर मिलते हैं तथा विभिन्न प्रतियों में पदों की संख्या भी भिन्न-भिन्न है।

रासकार स्वयं प्रसिद्ध मुनि और कवि थे अतः १४३१ की कृति में उपलब्ध पाठ से ज्ञात होता है कि रासकार ने यह पाठ भी सं० १४१२ में ही गौतम स्वामी के कैवल्य महोत्सव पर्व पर लिखा हो। प्रति की प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में उपलब्ध है।

प्रस्तुत रास चरित मूलक है। प्रसिद्ध जैन तीर्थङ्कर महावीर के प्रथम गणधर गौतम की साधना का इसमें विस्तृत वर्णन है। रास घटना प्रधान और भाव प्रधान दोनों का समन्वित रूप है। रास की कथा विचित्र घटनाओं से संजोई गई है, जिनके वर्णनों में कवि का काव्य-कौशल परिलक्षित होता है।

गौतम का मूल नाम इन्द्रभूति था व गौतम उनका गोत्र। मगध प्रदेश में राजगृह के समीप गुव्वर गांव में उनका जन्म हुआ। उनके देह की ऊंचाई ७ हाथ थी। इन्द्रभूति ५०० शिष्यों के प्रतिभाशाली एवं असाधारण विद्वान् गुरू थे। एक बार श्री महावीर स्वामी पावापुरी आये वहां उन्होंने समवसरण बनाया। हजारों स्त्री–पुरुषों व देवताओं को वहां जाते देख गौतम को अपने ज्ञान पर दंभ हुआ। वे ५०० शिष्यों सहित महावीर स्वामी से शास्त्रार्थ करने पहुँचे। महावीर ने उनका समाधान वेदों के प्रमाणों से किया। इन्द्रभूति ने महावीर से दीक्षा ग्रहण करली। ५०० शिष्य भी दीक्षित हुए और गौतम प्रथम गणधर कहलाये। अनुक्रम से ११ प्रधान वेद ज्ञाताओं ने महावीर का शिष्यत्व स्वीकार किया। गौतम के अतिरिक्त जो भी महावीर से दीक्षित होता, उसे कैवल्य-ज्ञान प्राप्त हो जाता था। आदिनाथ के मन्दिरों एवं जिनालयों से लौटकर गौतम ने रास्ते में एक पात्र में अंगूठा डुबाकर सब तापसों को खांड घी व खीर खिलाई अतः वे ५०० तापस ही केवली हो गये। ५०० को महावीर का समवसरण देखते ही कैवल्य हो गया। इस तरह १५०३ तपस्वी कैवली हो गये पर गौतम को कैवल्य-ज्ञान नहीं मिल सका क्योंकि महावीर के प्रति उनके मन में राग था। ७२ वर्ष की आयु में गौतम को निकटवर्ती ग्राम में उपदेशार्थ भेजकर महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया। गौतम को बड़ी पीड़ा हुई उन्होने सोचा महावीर ने अन्त समय में मुझे यह सोचकर कि गौतम बालक की तरह पीछा पकड़ कर मुझसे कैवल्य मांगेगा, दूर भेज दिया। मुझे भुलावे में डाल दिया, सच्चा स्नेह नहीं किया। विलाप करते हुए उनके मनमें यह बात आई कि महावीर तो वीतरागी थे, उनके साथ राग भाव कैसा? और ज्ञान

प्राप्ति के साथ ही वे केवली वन गये। गौतम ५० वर्ष तक गृहस्थ रहे। ३० वर्ष तक संयमी रहे और १२ वर्ष तक केवली रूप में विचरे और ९२ वर्ष की आयु में मोक्षगामी हुए। कथा का सार यही है।

सम्पूर्ण काव्य में कवि ने घटनाओं का चयन, तथा गौतम का चित्रण उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के उत्कृष्ट वर्णन के साथ किया है। प्रकृति वर्णन में भी कवि को सानी नहीं है। पूरा काव्य चरित मूलक आख्यान है। जिसकी कथा वस्तु धार्मिक है। तथा गौतम व महावीर की साधना से सम्वद्ध है।

गौतम रास एक ऐसा खण्ड काव्य है, जिसका उद्देश्य जीवन को आध्यात्मिक और साधना की ओर उन्मुख करना है। बिहार के ही नहीं, समस्त मानव समाज की प्रवृत्तियों से निवृत कर, सद्प्रवृत्तियों की ओर आह्वाहन ही प्रस्तुत रास का सन्देश है। एतदर्थ रास के प्रमुख–प्रमुख काव्यात्मक स्थलों का निरीक्षण किया जा सकता है।

कवि ने समवसरण की रचना में पर्याप्त उत्साह दिखाया है। इन्द्रभूति की स्पर्धा और पांच सौ शिष्यों सहित समवसरण में जाकर महावीर से साक्षात्कार करना और महावीर का वेद उक्तियों से उसे समझाना, गौतम का दीक्षित होना, प्रथम गणधर वनना तथा गौतम द्वारा सूर्य किरण पर चढ़कर २४ तीर्थङ्करों के मन्दिर में जाना और पुनः अनेक तपस्वियों को केवली बनाना आदि अनेक स्थल गेयता और काव्यमयता के उत्कृष्ट प्रमाण हैं:—

जोजन भूमि समोसरणू पेखइ प्रथमारंभि
दसदिसि देखइ विवुधवधू आवंति सरंभि
मणिमय तोरण दंड धज, कउसी से नववाट
वयर विवज्जितु जंतुगण प्रतिहारिज आठ
सुरनर किन्नर असुरवर, इंद्र इंद्राणिराय
चिंतिय मुकिउ चीतउ ए, सेवंता प्रभुपाय
सहस किरण जिम वीर जिणू पेखवि रूव विसालु
एहु असमें भुसंभवए सांचउ अह इंद्रियालु
तउ वालावइ भिजग गुरो इन्द्र मुइ नामेण
श्री मुख संसा सामि सवि फेंडइ वेदू पएण
मानु मेल्हि मदठेलि करे, भगतिहिं नामइ सीसु
वंधव संजम सुणिव करे, अगनि भूइ आवेइ
नाम लेइ आभाखि करे, तं पुण प्रति वोवेई

गरुइ इणि अभिमानि तापसजा मनि चींतवइं
ता मुनि चडिउ वेगि, आलंववि दिनकर किरण
कंचन मणि निप्पन्न दंडकलस धयवउ सहिउ
पेखइ परमांणदि जिणहर भरयेसर विहइं उ
निय निय काय प्रमाणि चहु दिसि संठिय जिणह विंव
पणभवि मन उल्हासि गोपन गणहरु तहि वसिउं (२६–२७)

रास का प्रकृति वर्णन कवि के काव्य-कौशल का जागरूक प्रमाण है। कवि ने गौतम स्वामी की साधना और शालीनता का वर्णन प्रकृति के उपादानों द्वारा किया है। कवि ने श्री गौतम गणधर में महापुरुषों के सभी अलभ्य गुणों का समावेश किया है। उनका व्यक्तित्व कवि ने बड़ी ही कुशलता से तथा बड़े विचित्र उपादानों से निर्मित किया है। उपमा और उत्प्रेक्षाएं सरस हैं। वर्णन का क्रम सुन्दर है तथा विविध उदाहरणों से पुष्ट है:—

जिम सहकारिहिं कोयल टहकउ
जिम कुसुमह वनि परिमल वहकउ, जिन चंदनि सोगंध विधि
जिम गंगाजलु लहरिहिं लहकइ
जिम कणयाचलु सेजिहिं झलकइ ति तिम गोयम सोभागनिधि
जिम मानस सरि निवसइ हंसा,
जिम सुरवर सिरि कणयवतं सा जिम महुकर राजीव ठनि
जिम रयणायरु रयणिहिं विलसइ,
जिम अंबरि तारागण विकसइ तिम गोयमु गुण केलिखनि
पुन्निम दिणि जिम ससिहरु सोहइ,
सुरतरु महिमा जिम जगुमोहइ पूरव दिसि जिम सहसकरो
पंचाननु जिम गिरिवरि राजइ
नरवर धरि जिम मयगल गाजइ तिम जिन सासनि मुनिपवरो
जिम गुरु तरुवरि सोहइं साखा,
जिम उत्तमि सुखि महुरी भाग्या जिम वनि केतकि महमहए
जिम भूमिपति भुयवलि चमकइ
जिम जिम मंदिरि घंटा रणकइ गोयम लवधिहिं गहगहए (३८–४१)

नायक की एक करुण स्थिति का चित्रण बड़ा मार्मिक है जब महावीर निर्वाण को प्राप्त होते हैं और गौतम को समीप के गांव में प्रतिबोध को प्रेषित कर देते हैं। गौतम उन्हें जाते देख बालकों की तरह फूट पड़ते हैं और इसी

विलाप में उन्हें महावीर के वीतरागी होने का ज्ञान होता है तथा उनका जितना राग महावीर के साथ था, वह सब छूट जाता है और कैवली बन जाते हैं। उनके मन के अन्तर्द्वन्द्व को कवि चित्रण करना चाहता है। महावीर के जाने के बाद गौतम के मन में उठने वाले संकल्प विकल्प—"मुझे दूर भेज दिया, लोक-व्यवहार का पालन नहीं किया।" हे प्रभो! आपने सोचा होगा गौतम बालक की तरह पीछा पकड़ कर मुझसे कैवल्य मांगेगा। आपने मुझे भुलावे में डाल दिया, सच्चा स्नेह प्रकट नहीं किया" आदि—बड़ी ही मार्मिकता प्रस्तुत करते हैं। कारुण्य हृदय गौतम विलाप करते हैं:—

प्रथोउ ए गोयमु श्रामि, देवसमी प्रतिबोध किए
आपणि ए त्रिशला देवि नंदण पत्तड परम पए
वलत्तउं ए देव अकासि, पेखवि जाणिय जिम समउं
तउ मुनि ए मनिहिं विपादु नाद्रमेद जिय ऊपनउ
तउ मुनि ए सामिय देखि, आप कन्हा हउ टालिउ ए
जाणतई ए तिहूयण नाहि लोक विवहारु न पालियउं
अति भउं ए क्रोधउं सामि जाणिउं केवलु सागिसिए
चीतंविउं ए बालक जेम अहवा केउइं लागिसिए
हउं किमवीर जिणिंद भगतिहिं भोलउ भोलविउं
आपण एउं चियउ नेहु नाहि न संपए सूचविउ (३३–३५)

और कृति इस तरह निर्वेदांत होकर निखर उठी है। भाषा की दृष्टि से कृति की भाषा पर अपभ्रंश का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है इसका कारण यह है कि सम्भवतः यह कृति १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखी गई है। क्योंकि जिस समय यह रास लिखा गया, उस समय कवि बहुत वृद्ध होगये थे। अतः बहुत सम्भव है कि इसका लेखन काल १४वीं शताब्दी रहा हो!

रचना गेय है। रासकर्त्ता ने रास के सम्बन्ध में अपनी ओर से कुछ भी नहीं कहा। रचना को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह रास गीति तत्व प्रधान है तथा चरितमूलक खण्ड काव्य है।

प्रति के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है: सं० १४३० कार्तिक सुदि प्रतिपदायां देव ॥ स्तवन पुस्तकं ॥ (वड़ा ज्ञान भण्डार, बीकानेर की प्रति)

इस प्रकार १५वी शताब्दी की उपलब्ध प्रमुख रचनाओं में श्री विनयप्रभ उपाध्याय विरचित गौतम रास का स्थान भी महत्वपूर्ण है।

---

## कलिकाल रास[1]

हीरानंद सूरि १५वीं शताब्दी के प्रमुख कवियों में से रहे हैं, जिनकी इस शताब्दी में कई महत्वपूर्ण कृतियां मिलती हैं। जिनमें वस्तुपाल तेजपाल रास (सं० १४८४), दशार्ण भद्ररास, जंबु स्वामी वीवाहला सं० १४६५ विद्याविलास पवाड़ो, स्थूलिभद्र बारहमासा आदि प्रमुख हैं, जिन पर यथावसर प्रकाश डाला जायगा। कलिकाल रास भी अपने ही प्रकार की रचना है। कलिकाल रास कलियुग की परिस्थितियां और गुणों पर प्रकाश डालता है। इस शताब्दी में रास संज्ञक रचनाओं में यह अपने प्रकार की पहली रचना है। कलियुग की लोक-स्थिति का वर्णन महाभारत में मिल जाता है। हिन्दी में बाण कवि का कलि चरित्र सं० १६७४ सर्वप्रथम मिलता है। सं० १७०० में सभा चन्द्रकृत कलिचरित्र और सं० १८६५ में रसिक गोविन्द कृत कलियुग रासो में आदि ग्रन्थ मिलते हैं।[2] परन्तु प्रस्तुत रास बाण के कलिचरित्र से भी २०० वर्ष पुरानी रचना है। इसकी प्रति जैसलमेर के जैन भण्डार में है तथा प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय से उपलब्ध है। प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के एक गुटके में भी इसकी प्रारम्भिक २८ गाथाएं मिलीं हैं। रचना प्रकाशित है।

श्री हीरानन्द सूरि की यह रचना १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की है। जिसमें इनकी भाषा सरल राजस्थानी या प्राचीन हिन्दी है। कवि ने वर्णन में यथार्थ का सहारा लिया है तथा कलियुग के कटु मीठे अनुभवों को भविष्य वक्ता के रूप में स्पष्ट करने में बड़ा सफल रहा है। १५वीं शताब्दी में मुसलमानी राज्य में हुए अत्याचार कलियुग के ही प्रभाव बताये गये हैं। प्रस्तुत रास लोक-काव्य है, जिसमें कवि ने जीवन के हर पहलू पर कलि का प्रभाव दिखाया है। पृथ्वी की स्थिति, राजा, माता, पिता, वस्तु, द्रव्य, साधु, गुरु, तीर्थ, तपस्वी, दान तथा मुनिवर आदि सबकी परिवर्तित स्थिति पर प्रकाश

---

१—हिन्दी अनुशीलन वर्ष १०, अङ्क १, मई १९५७ में श्री भंवरलाल नाहटा का "कलिकाल रास" शीर्ष लेख, पृष्ठ ५४—५६।

२—वही।

डाला है। इस तरह की कलिकाल सम्बन्धी रचनाएं परवर्ती राजस्थानी कवियों की अनेक मिलती हैं।

कवि की यह रचना भास, वस्तु, ठवणि, ठउणु फाग आदि शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित करके लिखी गई है। कवि ने वीर जिनेन्द्र तथा सरस्वती का स्मरण कर रास प्रारम्भ किया है।

प्रारम्भ में ही कवि कलियुग की सामान्य प्रवृत्तियों का उल्लेख करता है तथा कलियुग के प्रभाव कहता है। वर्णन सरल, वाक्य छोटे, भावपूर्ण तथा भाषा अत्यन्त सरल है:—

वीर जिणेसर पामियनाणु, कहिउ कलियुग तणउ प्रमाणु
समइ समइ बहुगुणनी हाणि, ईणिवचनि सहूइ हिव जाणि
पुहवीयं वरसइं थोड़ामेह, थोड़ा आयु घणा संदेह
राखिस रूपि हुआ भूपाल, अन्यावां नइ अति विकराल
नकरइ लोक तणी सुरसार, लोक हुआ हिव सविनिरधार
अति निग्रधन दीसइ दातार, कृपणह धरि लिखिमी अवतार
पुण्यवंत हुई क्षयउ ततकाल, पापी नर जीवइं चिरकाल
औषध मं कूअ अप्रमाण, खोरिय विद्या नहिय सुजाण
अंतरंग गयउ नेह विसाल, विरला दीसइ अन्त सुगाल
देव सवि हुआ निप्रभाव के न दीसइ सरल सुभाव
कोई न पालइ बोल्या बोल सहूइ नासत हूउं निटोल
कोई न दीसइं गुणि गंभीर सहूइ हओ अवल अधीर

विनय विवेक, लोक लाज सब दूर हो गई। साहस तत्व संसार में नहीं रहा। कलियुग के प्रभाव से दान और दानशील दोनों मिट गए हैं। परमार्थ का विनाश और पाखण्ड का प्रचार बढ़ रहा है। क्षमा हीन होगई और कटु वाणी का क्रम बढ़ गया है:—

लीला लाज गई अतिदूर परनिंदा छइ एकइं पूरि
विनय विवेक गया अचार, दयातणी कोइन करइ सारि
साहस सत्व नहीं संसार रंगरली नहीं हिया मझार

.... .... ....

दान दाविन दान दाविन गया परदेसि
कृपाल पउं हूउं धणु छतइ द्रव्य खाइन पीइ
जं वंचइ घट आप्पणउ किसुं दानते कृपण दीह

हां मन रचावणी मोटीय वात करंति
धरि आवंतइ आहणइ नासत नासीय जंति (वस्तु ११)

चारों वर्णों की स्थिति भी कवि ने बड़ी दयनीय दिखाई है। पैसे के प्रेमी स्वार्थी मित्रों तथा किए हुए उपकार को न मानने वालों की स्थिति भी उल्लेखनीय है:—

बंभण कुल आचरहि, हीण खित्रीयलोक अखत्रिहि लोण
सूग सांक मनि नवि धरइए
पाणि तणइ मिसि द्रोहइं सहूअ वण्किइ साहिव हुआ वहूअ
निरदय कर्म समाचरइए

.... .... ....

आप सवारथि सहूइ कोई परकजू छइ विरलउ कोई
काज विणसण अति घणाए
आप अरथि मइं वहुनेहु, साधइ अरथ दिखालइ छेहु
अरथ मित्र असुहामणाए
कोइ न जाणइ रूड़ाकीया, कृतघन लोक सवे हिव हूआ (वस्तु १४)

कुछ अद्भुत तथ्यों के द्वारा भी कवि ने काव्य-कौशल एवं कलियुगी प्रभावों का परिचय दिया है। काव्य का रुक जाना, मति का निष्ठुर होना, धर्ममार्गों में हुए अनेक प्रचलित मत-मतान्तरों का वर्णन तथा सत्य से दूर कूटवाणी वालों का सम्मान आदि चित्र कवि ने बड़े ही मोहक शैली में प्रस्तुत किये हैं:—

मेरु समान किया उपगार सरसव समवढि गणइ गमार
अवगुण एक न वीसरइ ए
पगि पगि जोइं छिद्रे अपार नवि जोई आपण आचार
अम्हि कुण मारगि अनुसरउं ए
डूंगरि उपरि वलतइ देखई पग हेठिइं ते गणइ लेखई
आपणु पुं मावइ घणउ ए
देखीय थोड़उ दोष अनेरउ विस्तारीय महि कहिइ अनेरउ
जे गुण हुई ते आवरई ए

.... .... ....

धरम मारग धरम मारग हूआ वहु भेउ
जे पुछि जई ते कहिए धर्म्म माहु अम्हि कहउं सचउ

आपि प्रशंसालगि सहूअ अंवर धम्म मुहि कहउं कचउ
अंधउ अंफा बाहुडी आविय वेडि लग्ग
जाण नयरह मणी कवण दिखाउइ मग्ग
साच कोई सारु कोई बोलंति
साचइ राचइ कोइ नवि कूड कपट सहूइ पतीजइ
वेशा अभयकुमार जिम धरम दंभि वंधीय लीजइ
कूड वचन बोलइ जिके माया रचिहं अपार
.... .... ....
घडइ वेगिहिं वडइ वेगिहिं गयउ वेसास
द्रोह मित्र कलत्र सुत माइवाप गुरू किसइ लेखइ
देव द्रव्य घरि वावरइ, लोभ अंध नयणे न देखइं
माय बाप कुल गुरु तणी मानइ नवि आसंक
सरल भाव विहि चालतां हेलहिं चडइं कलंक
दोहिलि घणीय सहंतडा ऊपति किसी न होइ
दूभर पेट हूआं घणाउं तिणि दुखिउं सह कोइ (वस्तु ३७-३८)

कवि के वाक्य छोटे, शैली उपदेशात्मक और रुचिकर है। प्रस्तुत काव्य जन-काव्य है अतः कलियुग सम्वन्धी समस्त स्थितियों और मर्यादाओं का लोप कवि ने बताया है। व्यवहारिक जीवन में कवि की वाणी एकदम यथार्थ है। मुनियों के लिए कवि ने एक अत्यन्त उत्कृष्ट चित्र खींचा है। भाषा की सरलता आलंकारिता तथा कथा-तत्व की भांति जनरुचि पर विजय पाने वाला प्रस्तुत रास है जिसको पढ़ने में बड़ा आनन्द मिलता है। साहित्य का उपयोग यही है कि वह व्यवहारिक जीवन के लिए निरन्तर उपादेय व हितकारक एवं मार्ग प्रदर्शन करने वाला हो। कवि ने मुनियों तथा श्रावकों का कलियुगी कायाकल्प बताया है। उद्धरण उल्लेखनीय है:—

मुणिवर मछरि आगला ए, पगि पगि करइ विरोध
एकइ मारगि अंतरउ ए, आणइं अतिहि अबोध
कोहि लोहि महि मोहिया ए, मारगि नवि चालंति
आप प्रशंसा तप करइं ए, परनिंदा बोलंति
लोक तणा मन रंजिव ए, वयणि धरइं वय रागु
साचा धरम ह ऊपरिईं ए, नवि दीसइ अनुराग
पंचविषय जीता नहीं ए, जिणि हिंच्यारि कषाय
तेह तेहरइं संजमि करीए, जीवन तणउ उपाय

# सोलहकारण रास

१५वीं शताब्दी की रास रचनाओं में एक छोटा-सा रास सोलह कारण रास है जिसके रचयिता सकल कीर्ति हैं। यह रचना दिगम्बर भण्डार जयपुर की है। कृति आमेर के भण्डार जयपुर (श्री दिगम्बर अतिशय क्षेत्र कमेटी जयपुर के भण्डार) में सुरक्षित है। प्रस्तुत रचना अप्रकाशित है तथा गुटका नं० २६२।५४ के पत्र २४२-२४३ पर लिखी है। प्रति का लेखन काल सम्भवतः १५वीं शताब्दी के आसपास है। सकलकीर्ति अपने समय के दिगम्बर कवियों में प्रमुख कवि हुए हैं जिन्होंने होलिका रास, भी लिखा है। प्रसिद्ध दिगम्बर कवि ब्रह्मजिनदास के ये समकालीन थे।

प्रस्तुत रास एक छोटा-सा खण्ड काव्य है जिसमें कवि ने प्रारम्भ में मंगलाचरण के पश्चात् साधना के लिए तप और तप के लिए १६ कारणों का विधान एक श्रेष्ठि कन्या प्रियंवता से किया है। प्रियंवता का परिचय कवि ने एक दुर्भाग्यशालिनी, गतधर्मा, और पड़रोगों युक्त महा कुरूपिणी के रूप में दिया है, जो पूर्व भव में किये अपराध के कारण इस गति को प्राप्त हुई थी।

जंबू दीवह भरत खेत मागध छह देसा
राजगृह छइ नगर हेम प्रभराज धनेसा
विजया सुंदरि कलतनाम पुरोहित महासरमा
प्रियंवहीता सु नारि पुत्री गत धरमा
कंकाल भैरवि रोग सहित छह रूपविहुणी

कवि ने पूर्व भव व कर्म सिद्धान्त का प्रचार कथा के द्वारा किया है तथा सोलह कारणों से जो साधना की सफलता और मनुष्यों को निर्वाण की प्राप्ति कराते हैं, प्रेम करना चाहिये यही सन्देश दिया है। कथा की नायिका एक वार पूर्व भव में आहार ग्रहण करने के लिये आये मुनियों पर थूक देती है और उसी पाप से वह इस जन्म में भयंकर रोगों से ग्रसित होकर कुरूपिणी बन जाती है। इस प्रकार दो चारण मुनि उसे पूर्व भव में किए पाप और इस भव में इसका उद्धार करने के १६ कारणों का उल्लेख करते हैः—

राजा महीपाल वेगवंतर छइ राणी
विसालंखी पुत्रि नाम विवेक विहूणी
आहार लेवा मुनि इक आया तख्यामा
आहार लेवा जाम चलिउ निरमल गुण धामा
गउखि चइठी तासु उवरि थूकिउ मद अंधी
राजा छेह ललूही करी तुस घूसठ दीनी
निंदा गरुहा आपु कर मुनिकन्ह लजाइ
कुंवरि ते तसु लियउ अनसरण आहारी

और इस प्रकार भिक्षार्थ आये युगल चारण मुनि उसे १६ कारणों से सम्पन्न व्रत करने का विधान समझाते हैं। कथा में धामिक तत्व होते हुए भी इस छोटी-सी कृति में कथा-तत्व होने से पाठक या श्रोता की रुचि बनी रहती है। रास रचना का उद्देश्य उपदेश प्रधान है कवि जन-साधारण में किस प्रकार पूर्व भव में किए दुष्कृत्यों से इस भव में फल प्राप्ति का सिखावन देकर संयम व उपासना के १६ कारणों को कथा सूत्र में बांधता है।

इन कुली तेरो जनमु हुवा पूरब विदेह,
सोलह कारण वरत करी तीर्थंकर छोइ
वचन सांभली पात्रनमी कहि सामि विचाऐ,
भादव मासि चैत्र मासि कहिए तिहुवारा
एकांति करि मास एक सीयलु पालीज्जइ,
परिहरि धरि व्यापार सवे मन सुद्धि करीजंइ
दिढ समिकत धरि पालियइ संकानवि कीज्जइ
दसन नान चरित्र तपों तहि विनउ करीज्जइ
सील व्रतु दिढ पालिए सब दूषण टारे,
ज्ञान निरंतर सार पढउ वहु अंगि विसालउ
भव भव भोग सरीर महि वर रागु धरीज्जइ,
चारिदान तप चारि भेद सकति पालीज्जइ
मुनिवर साधु समाधि वरी उपगार करेज्जइ,
दसविह वेयावरत करी नेमे पालिज्जइ
अरहंत देवह भक्ति करउ सब बीजा टालउ,
आचारयु गुरु भवि करी भगति प्रतिपाले
सास्त्र घना मुनि जो पढहि तिह भगति करीजइ,
प्रवचन वानी भगतिकरी निश्चउ आनीज्जइ

बाछल प्रवचन पालियइ नित निश्चउ आणी,
सोलह भावन भाविय ए गुरु पास वखानी
दिन दिन प्रतिमा पूजियइ निति जाप जपीज्जइ,
दोसह छपन ऊजवनउ मोदिक ढोनीज्जइ
न्हवन विलेवन द्वार दानसिद्धतु लहिज्जइ,
मुनिवर अज्जिय सयल संघ मघपूजकरीजइ
चारण गुरु पय नमस्करी व्रत दिढ कर लीनो
अन्तकाल सन्यास करी दिढ मरणवि सीधउ

इन्हीं सोलह कारणों से नायिका प्रियवन्ती भविष्य में श्रेष्ठ योनि को प्राप्त हुई। अन्त में कवि भरत वाक्य के रूप में सभी व्यक्तियों के लिए मंगल-कामना करता है कि इन सोलह कारणों का संयमी बनकर जो पालन करेगा उसे असाधारण पद प्राप्त होगाः—

एक चितु जो व्रतु करइ नरु अहवा नारी
तीर्थंकर पद सोलहइ जो समिकत धारी
सकल कीर्ति मुनिरासु कियउ ए सोलह कारण
ज संभलहि तिन्ह सुह कारण

वस्तुतः छन्द अलंकार और रस की दृष्टि से कृति का महत्व सामान्य है परन्तु भाषा की दृष्टि से तथा कथा वैभिन्न्य या वस्तु विकास की दृष्टि से सोलह कारण रास उल्लेखनीय है। बहुधा दिगम्बर कवियों की रचनाएं खड़ी बोली में ही अधिक मिलती हैं क्योंकि श्वेताम्बर जैन मुनियों व कवियों ने राजस्थानी और गुजराती में अधिक लिखा, परन्तु दिगम्बर कवियों ने खड़ी बोली में ही अपना साहित्य लिखा है। अतः भाषा की दृष्टि से प्रस्तुत रास कृति का महत्व अवश्य स्पष्ट है। यों कुल मिलाकर कृति साधारण है तथा काव्य की दृष्टि से बहुत प्रौढ़ नहीं है। ब्रह्म जिनदास की कुछ और कृतियों का विवेचन करने पर उनके काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ जानी जा सकती हैं। प्रस्तुत रास एक वर्णनात्मक कथा काव्य है जिसका मूल उद्देश्य धर्म प्रचार मात्र है।